दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2497 **तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार,** भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 5

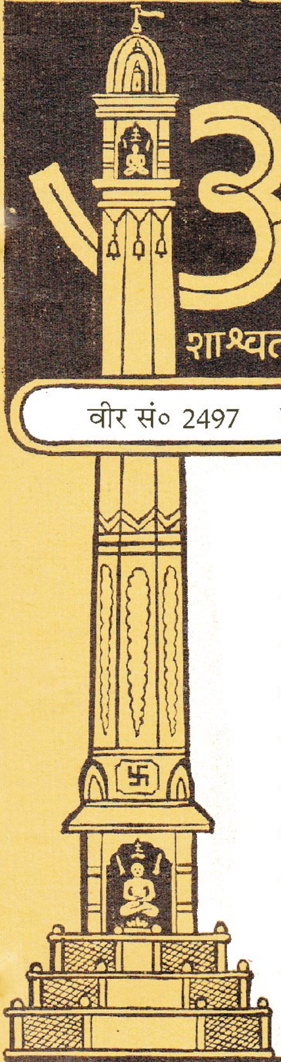

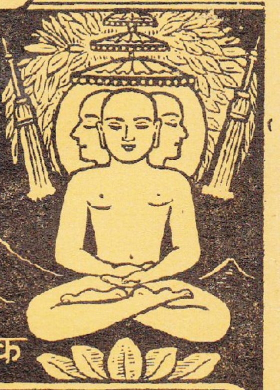

अध्यात्म-पद

(पंडित भागचंदजी कृत)

संत निरंतर चिंतत ऐसैं, आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥टेक ॥
रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥संत ॥
वरणादिक विकार पुद्गल के, इनमें नहिं चैतन्य निशानी।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥संत ॥
मैं सर्वांगपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी।
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत पर परनति हितमानी ॥संत ॥
भागचंद्र निरद्वंद्व निरामय, मूरति निश्चय सिद्ध समानी।
नित अकलंक अबंक शंक बिन, निर्मल पंक विना जिमि पानी ॥संत ॥

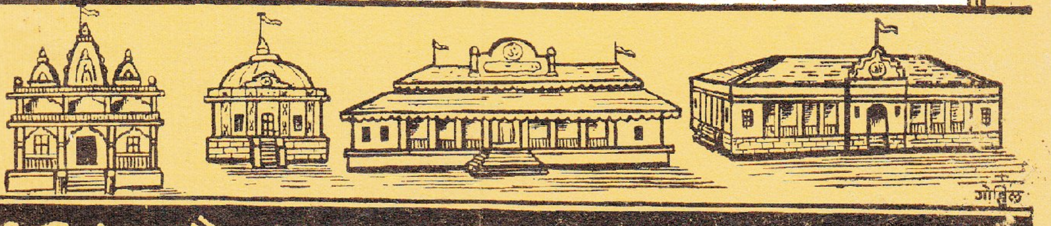

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

स्वर्गीय कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

दोहा— गुण अनंत ज्ञायक विमल, परमज्योति भगवान,
परमपुरुष परमातमा, शोभित केवलज्ञान॥

सवैया इकतीसा (मनहर)

ज्ञानगुण में ही ज्ञेय वासना भई है जिसे, उसे शुद्धआत्मा को सहज लखाव है,
अगम अपार जाकी महिमा महंत महा, अचल अखंड एकता को दरसाव है।
दरसन ज्ञान सुख वीरज अनंत धारै, अविकारी देव चिदानंद ही को भाव है;
ऐसो परमातमा परमपदधारी जिसैं, दीप उर देखै लखि निश्चयस्वभाव है॥2॥
देखैं ज्ञानदर्पणकौं मति अति तृप्त होय, अर्पण स्वभाव स्वरूप में करतु हैं,
उठत तरंग अंग आतमीक पावत है, अरथ विचार किये आप उधरतु हैं,
आतमकथन एक शिवहीको साधन है, अलख आराधन के भवकौं भरतु हैं,
चिदानंदराय के लखायवेकौं है उपाय, उसी का श्रद्धानी पद शाश्वत वस्तु है॥3॥
परम पदारथकौं देखैं परमार्थ होय स्वारथ स्वरूपकौं अनूप साधि लीजिए,
अविनाशी एक सुखराशी सोहै घटहीमें, उनकौ अनुभव सुभाव सुधारस पीजिये;
देवभगवान ज्ञानकलाकौं निधान जिसै, उर में लगाय सदाकाल स्थिर कीजिए
ज्ञान ही में गम्य जिसै प्रभुत्व अनंतरूप, वेदि निजभावना में आनंद लहीजिए॥4॥
दशा है हमारी एक चेतना विराजमान, अन्य-परभावों से तीनोंकाल न्यारी है,
अपनों स्वरूप शुद्ध अनुभवै आठौं जाम, आनन्दकौ धाम गुणग्राम विस्तारी है;
परमप्रभाव परिपूरण अखण्ड ज्ञान, सुख को निधान लखि अन्य रीति डारी है,
ऐसी अवगाढ़ गाढ़ आई परतीति जिसे, कहे 'दीपचंद' उसे वंदना हमारी है॥5॥
पर अखंड ब्रह्ममंड विधि लखै न्यारी, करम विहंड करै महा भवबाधिनी,
अमल अरूपी अज चेतन चमत्कार, समयसार साधै अति अलख आराधिनी;
गुण को निधान अमलान भगवान जिसे प्रत्यक्ष दिखावे जिनकी महिमा अबाधिनी,
एक चिद्रूप को अरूप अनुसरै ऐसी, आतमीकरुचि है अनंत सुख साधिनी॥6॥
अचल अखंड पद रुचि की धरैया भ्रम-भाव की हरैया एक ज्ञानगुण धारिनी,
सकति अनंत को विचार करै बारबार, परम अनूप निजरूप को उधारिनी;
सुख को समुद्र चिदानंद देखै घटमांहि, मिटै भवबाधा मोक्षपंथ की बिहारिनी,
दीप जिनराजसौं स्वरूप अवलौके ऐसी, संतों की मति है महामोक्ष अनुसारिनी॥7॥

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

सितम्बर : 1971 ☆ श्रावण : वीर नि० सं० 2497, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 5

जानने का स्वभाव आत्मा का है, इंद्रियों का नहीं

पाँच इंद्रियों द्वारा उस-उस इंद्रिय के एक विषय का ही ज्ञान होता है, लेकिन यथार्थ में जाननेवाला आत्मा है, वह पाँच इंद्रियों से पृथक् रहकर पाँच इंद्रियों के विषय को जानता है।

'आँख देखती है' ऐसा नहीं होता, लेकिन 'आँख द्वारा मैं देखता हूँ'—ऐसा होता है। यह ऐसा सूचित करता है कि जाननेवाला आँख से भिन्न है।

'जीभ रस को जानती है' ऐसा नहीं होता, लेकिन 'जीभ द्वारा मैं रस को जानता हूँ' ऐसा होता है। यह ऐसा सूचित करता है कि रस को जाननेवाला जीभ से भिन्न है।

'कान शब्द सुनता है' ऐसा नहीं होता, लेकिन 'कान द्वारा मैं सुनता हूँ', यह ऐसा सूचित करता है कि शब्दों को जाननेवाला कान से जुदा है।

इसप्रकार पाँच इंद्रियों में आत्मा पृथक् है, इंद्रियों में कुछ जानने का स्वभाव नहीं, आत्मा में ही जानने का स्वभाव है; और वह भी इंद्रियों द्वारा जाने, ऐसा स्वभाव नहीं, लेकिन स्वयं के ज्ञानस्वभाव से ही जानना स्वभाव है।

धर्मात्मा की गंभीर परिणति का स्वरूप समझानेवाला आत्म-अनुभूतिप्रेरक आनंदमय प्रवचन

यह भाद्रपद कृष्णा दोज का मंगल-प्रवचन है। धर्मात्मा की गंभीर चेतनापरिणति—जो कि समस्त रागादि परभावों से अत्यंत भिन्न, चैतन्य में एकत्वभाव से निरंतर वर्तती है—उस परिणति को पहिचानने से चैतन्य का और राग का भेदज्ञान होकर आत्मसाक्षात्कार होता है—वहीं धर्मात्मा की परमार्थ भक्ति है, ऐसी भक्ति द्वारा अवश्य मुक्ति होती है। उस चेतनापरिणति की सच्ची पहिचान और आत्म-अनुभूति कैसे हो, उसका अद्‌भुत वर्णन गुरुदेव ने इस प्रवचन में किया है। गुरुदेव कहते हैं कि यह तो मंगल दोज के अवसर पर अध्यात्म का मिष्टान्न परोसा जा रहा है। आत्मजिज्ञासु जीव इस प्रवचन के भावों का मनन करके आत्मलाभ प्राप्त करो। [संपादक]

1. इस नियमसार में निश्चय प्रत्याख्यान की बात चल रही है। प्रत्याख्यान करनेवाले जीव को प्रथम तो परभाव से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय और अनुभव होता है।

2. जिन परभावों को छोड़ना है, उन्हें स्वयं से भिन्न जाने बिना किसप्रकार छोड़ेगा ?

3. अंतर्मुख होकर अपने ज्ञानस्वभाव का अनुभव करने से ज्ञान में से परभाव का त्याग सहज ही हो जाता है, क्योंकि ज्ञान परभाव के त्यागस्वरूप ही है।

4. परभावों से भिन्न, मैं स्वयं आनंदस्वरूप हूँ, ऐसे अपने आनंदस्वरूप में रहूँ, वही सुख है और वही परभाव का त्याग है।

5. पहले आत्मा के स्वभाव में मग्न होकर ऐसी प्रतीति करने से इंद्रियातीत आनंद का अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होने पर श्रद्धा में समस्त परभावों का अत्यन्त प्रत्याख्यान हो जाता है।

6. सम्यग्दृष्टि स्वयं को केवलज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप अनुभव करता है, उसमें परभाव

का एक अंश भी नहीं होता। ऐसे आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान के बल द्वारा निजस्वरूप में एकाग्रता होने पर परभावों का प्रत्याख्यान हो जाता है।

7. स्वरूप में स्थित ज्ञान स्वयं परभाव के त्यागस्वरूप होने से प्रत्याख्यान है। ज्ञानभाव की जो अस्ति है, उसमें रागादि विरुद्ध भावों की नास्ति है।

8. प्रथम ज्ञान और रागादि का अत्यंत स्पष्ट भेदज्ञान करना चाहिये। सच्चा भेदज्ञान करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

9. अहो, जहाँ आत्मा का ऐसा स्वरूप अपने अनुभव में आया वहाँ दूसरों से पूछना नहीं रहता। समयसार की 206वीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! अन्य से न पूछ... ज्ञानस्वरूप आत्मा अनुभव में आने पर तुझे स्वयं सब समाधान हो जायेंगे। संदेह नहीं रहेगा, तथा पूछना भी नहीं पड़ेगा।

10. अहा, ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करानेवाला यह समयसार शास्त्र जगत का अद्वितीय चक्षु है, आत्मा को प्रकाशनेवाला अजोड़ परमागम है। कुन्दकुन्दस्वामी जैसे महान आचार्यदेव ने भगवान की वाणी सुनकर तथा अपने आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव द्वारा इस परमागम की रचना की है। जगत के मुमुक्षु जीवों को आत्मा का अद्भुत वैभव दिखता है।

11. आत्मा तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप ही सत्य है, वही अनुभव करनेयोग्य है, वही कल्याणरूप है।—इसप्रकार अपने सत्य ज्ञानस्वरूप का निर्णय करके हे जीव! तू अपने ज्ञान से ही संतुष्ट हो... तृप्त हो... उसमें स्वयं तुझे परम सुख का अनुभव होगा, फिर तुझे अन्य से पूछना नहीं पड़ेगा। वचन-अगोचर ऐसे अपूर्व आत्मिक सुख का तुझे अनुभव होगा; वह सुख तुझे स्वयंमेव अपने स्वाद में आयेगा। तू स्वयं वह सुख है, फिर अन्य से क्यों पूछना पड़े?

12. अपनी वस्तु अपने में देखी, साक्षात् अनुभव किया, वहाँ संदेह क्या? ज्ञानस्वरूप मैं स्वयं सत्य हूँ, मैं स्वयं ही कल्याण हूँ, मैं ही अनुभवी हूँ और मैं ही सुखस्वरूप हूँ—ऐसा पहले दृढ़ निर्णय करके संवेदन-प्रत्यक्ष से स्वानुभव किया, वहाँ अब किससे पूछना रहा?

13. अपने पास ही मैंने अपना तत्त्व देखा, और मेरा मोह नष्ट हो गया; अब मैं सर्व कर्मों से अत्यंत रहित, चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही आत्मा द्वारा वर्तता हूँ। निर्विकल्प-वीतरागी परिणति द्वारा मैं स्व में वर्तता हूँ—इसप्रकार धर्मी अपने को अनुभव करता है, उसे संवर-निर्जरा है, उसे प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान है, उसे सुख और धर्म है।

14. धर्मी को नि:शंक प्रतीति है कि मैं राग में नहीं, मैं निर्विकल्पभाव द्वारा अपने चेतनस्वरूप में ही वर्तता हूँ।

15. पहले राग में-विकल्प में एकत्वबुद्धि के कारण चैतन्य के निधान को ताले में बंद कर रखा था; अब विदित हुआ कि राग से मेरा चैतन्यतत्त्व अत्यंत भिन्न है, वही अपूर्व आनंद के अनुभव द्वारा चैतन्य का खजाना खुल गया। आत्मा में आनंद का अवतार हुआ।

16. ऐसे सम्यग्दृष्टि-सम्यग्ज्ञानी-सत् चारित्रवंत धर्मात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ। अहा! वे तो जगत के धर्मरत्न हैं! सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमार्ग का रत्न है। उसे धारण करनेवाले धर्मात्मा तो धर्मरत्न हैं। भव-भव के क्लेश का नाश करने के हेतु मैं नित्य उनकी वंदना करता हूँ।

17. किसप्रकार वंदना करता हूँ?—कि निर्विकल्पभाव द्वारा उन जैसे ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा में वर्तता हुआ मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। राग में वर्तने से सच्चा नमस्कार या सच्ची भक्ति नहीं होती, पंच परमेष्ठी ज्ञानी-धर्मात्माओं को सच्चा नमस्कार करनेवाले को अपने ज्ञान और राग की भिन्नता प्रगट हो गई है। 'ऐसे भाव द्वारा मैं ज्ञानी को नमस्कार करता हूँ।'

18. सिद्ध भगवान आदि पंचपरमेष्ठी भगवंत अपने शुद्ध आत्मा में ही स्थिर हैं, इसलिये उन्हें नमस्कार करनेवाला जीव शुद्ध आत्मा की ओर झुकता है—उसी में उन्मुख होता है—उसमें तन्मय होता है और राग से पृथक् हो जाता है। इसप्रकार अपना शुद्ध आत्मा ही सच्चा शरण है। बाह्य में पंचपरमेष्ठी का शरण व्यवहार से है।

19. केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुखस्वभावी परम चैतन्यतेज मैं हूँ—ऐसा जिसने अंतर्मुख होकर स्वयं अपने को जाना, उसने क्या नहीं जाना? स्वयं अपने को देखा

उसने क्या नहीं देखा ? तथा उसका श्रवण करने पर क्या श्रवण नहीं किया ?—अर्थात् अपना ऐसा शुद्ध आत्मा ही श्रवण करनेयोग्य तथा श्रद्धा-ज्ञान में लेने योग्य सर्वश्रेष्ठ है, उससे ऊँचा अन्य कोई नहीं है।

20. अरे, जीवों ने व्यवहार की-राग की बातें तो अनंत बार सुनी हैं और उसका आचरण भी किया है, परंतु परम तत्त्व अंतर में कैसा है, उस परमार्थ स्वरूप को प्रेम से कभी नहीं सुना।

21. 'प्रेम से नहीं सुना' ऐसा कहा। 'प्रेम से सुना' तब कहा जाता है कि अंतर की गहराई में उतरकर उसका साक्षात् अनुभव करे। वक्ता ने जैसा स्वभाव कहा है, वैसा स्वभाव अपने लक्ष में लेकर अनुभव करे, तभी सच्चा श्रवण किया कहा जाता है।

22. हे जीव! अपने स्वभाव को तू अनुभव में ले। अंदर में अमृत का सागर भगवान आत्मा है, उसमें मग्न हो... वही आनंद है। उससे बाह्य में जाना तो आकुलता है, पाप है, क्योंकि पवित्रता से विरुद्ध होने से अध्यात्म में उसे पाप कहा है। रागरहित चैतन्य का अनुभव ही पवित्र सुखरूप है।

23. ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मात्मा के हृदय में चैतन्यहंस निवास करता है। तथा चैतन्यशक्तिसंपन्न आनंदमय परमात्मा उसके अंतर में जयवंत वर्तता है।

24. अहो, ऐसा अनुभव करना, उसमें अतीन्द्रिय आनंद का परम स्वाद है।

25. बादाम की बर्फी अच्छी स्वादिष्ट कही जाती है, परंतु वह स्वाद तो जड़ है। यहाँ तो संत आनंद के स्वाद से भरपूर वीतरागी बादामपाक परोसते हैं।

26. आज दोज के मंगल अवसर पर यह बादाम की बर्फी परोसी जा रही है। अंतर में परमात्मा के अनुभवरूप ऐसा बादामपाक सम्यग्दृष्टि ही पचा सकते हैं।

27. ज्ञानी अपने को ऐसा अनुभव करता है कि—

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्तिस्वभाव जो,
मैं हूँ वही, यह चिंतवन होता निरंतर ज्ञानि को॥ (नियमसार : 96)

28. आत्मा केवलज्ञानादि चतुष्टयस्वरूप है। केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय है, वह प्रगट कार्य

है और उसके आधाररूप सहज ज्ञान-दर्शनादि चतुष्टय त्रिकाल है।—ऐसे चतुष्टयस्वरूप आत्मा को जानकर धर्मी उसी की भावना करते हैं।

29. —किसप्रकार भावना करते हैं ?

समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त होकर, तथा अपने स्वरूप में अत्यंतरूप से अंतर्मुख होकर, वह अपने ऐसे आत्मा को ध्याता है। मुमुक्षु जीवों को उसी की भावना करनी चाहिये—ऐसा उपदेश है।

30. समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से रहित कहा—उसमें अशुभ या शुभ किसी भी राग की रचना, वह सब बाह्यविस्तार है। बाह्यलक्ष्य से ही राग की उत्पत्ति होती है, अत: समस्त बाह्यभावों से अत्यंत भिन्न होकर, निर्विकल्प चैतन्यपरिणति के द्वारा ही धर्मी अपने अंतर में परमात्मतत्त्व की भावना करता है।

31. अहो, आत्मतत्त्व की यह अलौकिक बात है, इसे जानकर अंतर्मुखरूप से इसी की भावना करनेयोग्य है।

32. 'राग तो है ना'—तो धर्मी कहता है कि भले हो, परंतु वह राग कहीं मैं नहीं हूँ, अपने स्वभाव को मैं अनुभव रागरूप नहीं करता, लेकिन परिणति को राग से भिन्न करके, उस परिणति द्वारा केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करता हूँ, वही मैं हूँ।

33. राग होने पर भी मैं उसकी भावना नहीं करता, उसे अपनेरूप नहीं देखता, उस ओर मेरा झुकाव नहीं; मेरा झुकाव तो अपने चैतन्य परमात्मतत्त्व में है, उस ओर उन्मुख हुई परिणति में रागादि नहीं, इसलिये वह परिणति स्वयं प्रत्याख्यान स्वरूप है।

34. ऐसे आत्मा को जानकर उसकी निरंतर भावना करना—ऐसी वीतरागी संतों की शिक्षा है।

35. अहो, चैतन्यतत्त्व तो परम गंभीर है, उसमें परिणति अंतर्मुख हो, तभी उसका वास्तविक चिंतन एवं भावना होती है।

36. जीव द्रव्यस्वभाव से त्रिकाल ज्ञानस्वरूप तो है ही—परंतु मैं त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा जानती ही है उस ओर एकाग्र हुई पर्याय; त्रिकाल सन्मुख एकाग्र हुई पर्याय ही जानती है—कि 'मैं ऐसा हूँ'।

37. ऐसी स्वसन्मुख परिणतिरूप परिणमित हो, तभी आत्मा ने अपने सहज स्वभाव का स्वीकार और अनुभव किया कहा जाता है। स्वयं उस भावरूप परिणति हुए बिना उसका सच्चा स्वीकार या अनुभव नहीं होता।

38. इसप्रकार स्व में अंतर्मुख होकर मैंने अपने परम आत्मा को देखा, जाना तथा अनुभव किया। स्वयं अनुभव की हुई अपनी वस्तु में संदेह क्या? स्व-वस्तु की अनुभूति होते ही संदेह टला, भय टला, स्वयं अपने से तृप्त हुआ, निःसंदेह हुआ।

39. समस्त विकल्प-जंजाल को छोड़कर चैतन्य के निर्विकल्प अमृतरस का पान करो!

40. ज्ञानी सदैव ऐसी भावना भाता है कि मैं कारणपरमात्मा हूँ। ज्ञानियों के हृदय-सरोवर का हंस तो आनंदरूप सहज चैतन्य परमात्मा है।

41. परभावों को सदैव अपने से पृथक् रखनेवाला, अर्थात् परभावों से सदैव रहित ऐसा चैतन्य-हंस, उसका ज्ञानी अपने हृदय में ध्यान करते हैं।

42. यह चैतन्य-हंस कारणपरमात्मा, सहज चतुष्टय-स्वरूप त्रिकाल है, वह स्वयं केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय का आधार है, उसे आधार-आधेय के भेद नहीं। आधार-आधेय संबंधी विकल्पों से रहित अनुभूति द्वारा जो परमसुख उत्पन्न होता है, उसका स्थान यह सहज परमात्मतत्त्व है।

43. केवलज्ञानादि के आधाररूप ऐसे अपने तत्त्व का अवलोकन करके (श्रद्धा-ज्ञान करके) ज्ञानी उसकी ही भावना करते हैं। ऐसे तत्त्व की दृष्टि करके धर्मी कहता है कि ऐसे सहज स्वरूप से मैं सदा जयवंत हूँ।

44. जयवंत तत्त्व की सन्मुखता से जो सम्यक्-श्रद्धा-ज्ञान-सुख की अनुभूति प्रगट हुई, वह जयवंत है।

45. परिणति परभाव से छूटकर जब अंतर्मुख हुई, तब भान हुआ कि ऐसे स्वभाव से मेरा आत्मा जयवंत है।

46. यह कोई विकल्प की बात नहीं है, किंतु धर्मी को अपने अंदर वैसे वेदनरूप परिणति हो गई है।

47. धर्मी को राग से निरपेक्ष, इंद्रियों से निरपेक्ष ऐसे सम्यक् मति-श्रुतज्ञान स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप हैं, अंतर्मुख होकर अपने सहज ज्ञानादि स्वरूप आत्मा को स्वयं जानता है।

48. आत्मा के सहज स्वभावरूप निजभाव को ज्ञानी कभी छोड़ता नहीं, और रागादि परभावों को कभी अपना बनाता नहीं, वह तो सहज ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप ही अपना चिंतवन करता है:—

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिंतन यही॥97॥

(नियमसार)

49. आत्मा का सहज स्वभाव, वह परमभाव है, उस परमभाव के सन्मुख होकर ज्ञानी अपने आत्मा को कैसा भाता है, उसका यह वर्णन है। ऐसे स्वभाव की भावना अर्थात् उसमें तन्मयभावरूप परिणति, वह परम आनंदरूप तथा मोक्ष का कारण है।

50. निजभाव अर्थात् आत्मा का परम भाव, निजभाव आत्मा के सहज ज्ञान-दर्शन-सुख तथा वीर्यस्वभावरूप है, उसको आत्मा कभी छोड़ता नहीं। स्वभाव और स्वभाववान भिन्न नहीं हैं कि उन्हें आत्मा छोड़े! चैतन्य के ऐसे एकत्वस्वभाव में संसार-परभाव का प्रवेश कभी नहीं है।

51. मैं तीनों काल अपने ऐसे परम भावरूप ही हूँ—ऐसा जिस पर्याय ने अंतर्मुख होकर स्वीकार किया, वह पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-सुखस्वरूप हुई है। पर्याय अंतर्मुख होकर तथा रागादि से भिन्न होकर, 'परमभावस्वरूप कारणपरमात्मा मैं हूँ'—ऐसा अपने को अनुभवती है—जानती है—देखती है—भाती है।—ऐसे कारणपरमात्मा में उदयादि परभावों का कभी ग्रहण नहीं है।

52. अहो जीवो! ऐसे परमस्वभाव को लक्ष में लेकर उसकी भावना करनेयोग्य है। ऐसे स्वभाव की बात का श्रवण भी महा भाग्य से प्राप्त होता है। जिसकी पर्याय अंतर्मुख परिणमित हुई है, वह धर्मात्मा ऐसा जानता है कि मैं तीनों काल सहज स्वभाव से परिपूर्ण परम आत्मा हूँ, मेरे स्वभाव का कभी नाश नहीं है। अरे, ऐसा मैं त्रिकाल

हूँ—वहाँ कौन मुझे मारे और कौन मेरी रक्षा करे ?

53. मेरा स्वभाव ही केवलज्ञानादि स्वभाव से सदा भरपूर है; उसका स्वीकार करने से अब पर्याय में अभूतपूर्व केवलज्ञानादि प्रगट होंगे ही। पर्याय में केवलज्ञानादि भाव नवीन प्रगट हुए, इसलिये वे अभूतपूर्व हैं, परंतु सदैव सहज स्वभाव से तो केवलज्ञानादिरूप ही हूँ। उससे कभी भी पृथक् हुआ नहीं—ऐसा धर्मी अपना चिंतवन करता है, जानता है, श्रद्धा करता है, अनुभव करता है—इसी का नाम भावना है। और यह भावना ही मोक्ष का उपाय है। अत: ऐसे परम तत्त्व की भावना निरंतर करो। राग द्वारा उसकी भावना नहीं होती, रागादि परभावों का नाश करके चैतन्य की सनमुखता से ऐसी भावना की जाती है।

54. अरे जीव! अंतरस्वरूप की गहराई में उतर... वहीं तेरा आत्मा विद्यमान है। रत्न के लिये समुद्र में डुबकी लगानी पड़ती है, उसीप्रकार चैतन्य रस के समुद्र में से सम्यग्दर्शन आदि परम रत्नों की प्राप्ति के हेतु तू अंतर की गहराई में उतर... समस्त परभावों को नाश करके चैतन्यचमत्कार से भरपूर चैतन्यसमुद्र में डुबकी लगा।

55. चैतन्यतत्त्व की गहराई में उतरी हुई अर्थात् उसके सन्मुख होकर परिणमित हुई परिणतिवाला जीव—'यह मैं हूँ'—इसप्रकार स्वयं को परमात्मस्वरूप देखता है—अनुभव करता है। अहो, अंतर में लीन होकर ऐसे स्वतत्त्वरूप अपना अनुभव करो! एकावतारी इंद्र भी जिसकी बात परम आदर से सुनते हैं—ऐसे इस परमतत्त्व को लक्ष में लेकर उसकी भावना करो... उसके सन्मुख परिणति करो।

56. एक इंद्र अपने दो सागरोपम के आयु-काल में असंख्यात तीर्थंकर भगवंतों के पंच कल्याणक महोत्सव मनाता है, असंख्यात तीर्थंकरों के श्रीमुख से ऐसे परमतत्त्व की बात बहुमानपूर्वक श्रवण करता है।—ऐसा यह परमात्म तत्त्व जीवों को महाभाग्य से सुनने को मिलता है।

57. और ऐसे तत्त्व की सम्यक् प्रतीति तथा अनुभव करे, वह तो कृतकृत्य हो जाता है। इसलिये हे जीवो! अंतर्मुख होकर तुम अपने ऐसे तत्त्व को अनुभव में लो—ऐसा उपदेश है।

58. अंतर में चैतन्यरस का आस्वादन करने के बाद मेरा चित्त अन्य कहीं लगता नहीं... चित्त चैतन्य में ही संलग्न है। निजस्वरूप में लगे हुए चित्त को पर की चिंता करने का अवकाश ही कहाँ है ?

इन 58 मंगलरत्नों के मनन द्वारा हे मुमुक्षुओं ! तुम भगवती चेतना को प्राप्त करो !

चैतन्य अनुभूतिवंत... ज्ञानचेतनापरिणत.... धर्मात्माओं को तदाकार नमस्कार !

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

चैतन्यतत्त्व ही उपादेय है

निर्विकल्प शांत अनुभूति से आत्मा वेदन में आता है; उस अनुभूति से विपरीत ऐसे जो राग-द्वेष-मोह, उनसे उत्पन्न हुए कर्म और उन कर्मों से निर्मित यह देह—इस देह से पार अतीन्द्रिय आत्मा को जहाँ अनुभूति में लिया, वहाँ पर का संबंध समाप्त ही हो गया, कर्म और राग-द्वेष भी पृथक् हो गये। जहाँ शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है, वहीं पर राग-द्वेष-कर्म और शरीर का संबंध है। परंतु जहाँ अनुभूति द्वारा स्वयं अपने में ही स्थित रहा, वहाँ पर का संबंध भी नहीं रहा, और अशुद्धता भी नहीं रही। इसप्रकार शुद्ध परमात्मतत्त्व की भावना से संसार का नाश हो जाता है।

समभाव में स्थित मुनियों को और धर्मात्माओं को परम आनंद उत्पन्न करनेवाला जो परमतत्त्व अंतर में स्फुरायमान होता है—उसी को तू शुद्धात्मा समझ।—जितना भी व्यवहार है, वह सब शुद्धात्मा के अनुभव से बाहर ही रह जाता है। अहा, परम तत्त्व को जहाँ ध्यान में लिया, वहाँ वह तत्त्व परम अपूर्व आनंदरूप है। अहा, संतों को ऐसा तत्त्व परम प्रिय है। तू उसे उपादेय मानकर ध्यान कर। जगत में आनंददायक आगर कोई हो तो केवल यह परम चैतन्यतत्त्व ही है; इसलिये यही उपादेय है; जो आनंददायक न हो, वह उपादेय किसप्रकार कहला सकता है ? जो उपादेय होता है, वही आनंददायक ही होता है; जो तत्त्व आनंद की प्राप्ति न कराये, उसे कौन आदरणीय मानेगा ?

जीवत्व आदि शक्तियों से आत्मा का जीवन है

आत्मद्रव्य अनंत शक्तियों अर्थात् अनंत गुणों का पिंड है, जिसको प्रगट दशा में भूतार्थ धर्म करना है, उसे स्वद्रव्य की शरण में आना चाहिये; स्वाश्रय द्वारा ही सहजानंदमय आत्मधर्म की प्राप्ति होती है।

यहाँ जीवत्व शक्ति का वर्णन है—जो आत्मद्रव्य को अवस्थित रहने में कारण है, ज्ञानदर्शनमय चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका स्वरूप-लक्षण है, उसे जीवत्वशक्ति कहते हैं। किंतु रागादि या निमित्तों के साथ उसका लक्ष्य-लक्षण या कारण-कार्यरूप संबंध नहीं है। आत्मा से भिन्न अन्य वस्तुएँ हैं, रागादि व्यवहार भी है, परंतु वह इस जीव की अपेक्षा से अजीव है, अनात्मा है, अवस्तु है। जीवत्वशक्ति के समान अन्य सभी शक्तियाँ ज्ञानमात्रमयी प्रत्येक आत्मा में पर से निरपेक्ष हैं।

लोग पुकारते हैं कि 'जीयो और जीने दो'—किंतु पर के द्वारा या राग के अस्तित्व द्वारा जीना, वह तो अशुद्धता है, पुण्य-पापमय आस्रव-बंधरूप होने से वह वास्तव में जीव का जीवन नहीं है।

गुण किसे कहते हैं? कि द्रव्य के पूर्णभाव में और उसकी तीनोंकाल की सर्व अवस्थाओं में व्यापक शक्ति को गुण कहते हैं। पर्याय किसे कहते हैं? गुण के कार्य को, परिणमन को पर्याय कहते हैं, जो क्षेत्र अपेक्षा अपने द्रव्य के संपूर्ण भाग में और काल अपेक्षा से एक समय अपने कार्यकाल में अनित्य तादात्म्य संबंधरूप स्व-द्रव्य में ही व्यापक है। अनंत गुणों के पिंड आत्मद्रव्य में और उसके आश्रय से होनेवाली पर्याय में भी पराश्रयरूप व्यवहार का अभाव है। आत्मद्रव्य में अभेद दृष्टि होने पर अनंत शक्ति के साथ जीवत्व शक्ति भी द्रव्य-गुण-पर्याय में सम्यक्रूप से उछलती है-परिणमित होी है और मिथ्यात्वादि मलिनता का व्यय होता है, उसी का नाम अनेकांत है।

द्रव्य और गुण नित्य होने से ध्रुव उपादान है, स्वसन्मुखता द्वारा निर्मल पर्याय हुई, वह क्षणिक उपादान है।

आत्मा कहीं न जाता है, न आता है, निरंतर स्वचतुष्टय में अवस्थित छह कारकरूप

स्वतंत्र परिणमन सहित है और पराश्रयरूप व्यवहार के अभावरूप ज्ञानधारा से ही जीव का जीवन है। जो सफल-सार्थक जीवन है। एक गुण की पर्याय में अनंत गुण की पर्यायें उछलती हैं; अहा, उसकी रमणीयता उसी में है। आत्मा पूर्ण ज्ञानानंदमूर्ति है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और आनंदमय जागृति, वही विभाव से मुक्तिरूपी समाधिमरण है। अज्ञानी न तो जीना जानता है, न मरण को जानता है। प्रत्येक शक्ति स्व से है, पर से, व्यवहार से, निमित्त से नहीं है; इसप्रकार अनेकांत को प्रगट करके भेदज्ञानी जीव अपने पूर्ण अस्तित्व से सदैव जीवित है।

(2) अजड़त्वमयी चितिशक्ति भी आत्मा में नित्य है, जो स्वरूप से है; रागादि व्यवहाररूप से या निमित्त अर्थात् संयोग के कारण से नहीं है; इसप्रकार प्रत्येक शक्ति स्वद्रव्य से अनंतगुण के साथ व्यापकत्व और अनेकांतपना स्वयमेव प्रगट करती है।

यह शक्ति (गुण) भी पारिणामिकभाव से है। पारिणामिकभाव का लक्षण (पंचास्तिकाय गाथा 56 टीका में) 'द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः।' जिनके द्वारा जीव अपने अस्तित्वरूप है अर्थात् पर से, रागादि व्यवहार से या दस प्राण को धारणरूप अशुद्धता से जीव है, ऐसा नहीं है, किंतु पर से निरपेक्ष स्व से स्व में नित्य अवस्थित है, दर्शन-ज्ञान में अभेद भावरूप अपने से अवस्थित रहता है, और अजड़त्वमयी चितिशक्ति आदि अनंतगुणमय स्वयं परिणमता है, व्यवहार की अभूतार्थता, निश्चय की भूतार्थता, यह अमृतमय अनेकांत जीव का जीवन है।

द्रव्य का लक्ष करने से अंदर जो पूर्णशक्तियाँ हैं, वहाँ से सब गुण की पर्याय उछलती-परिणमित होती हैं। एक गुण के निश्चय में दूसरे गुणों की अपेक्षा-आधार नहीं है। गुण के अस्तित्व में मूल कारण गुण है, आधार स्वद्रव्य है, पर्याय का निश्चयकारण पर्याय है, पर्याय उसी पर्यायरूप से सत् है, यह स्वतंत्रता की बात रुचि सहित कभी सुनी नहीं है।

अंतरंग में स्वसंपत्तिरूपी सर्व सामर्थ्य से सदा परिपूर्ण द्रव्य है, उसी के आधार द्वारा स्वाश्रय से परिणमन का नाम धर्मरूपी प्रोषध है। उसके द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित मोक्षमार्ग का पोषण होता है।

सर्वगुणांश सम्यक्त्व; प्रत्येक गुण परिणमित होता है, जब स्वद्रव्य की श्रद्धा के द्वारा निर्मलता प्रारंभ होती है, तब से द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापकरूप से उत्पाद-व्ययरूप जीव परिणमित होता है, उसका नाम वस्तुस्वभावमय धर्म है। आत्मा में जड़पना किंचित् भी नहीं है,

किंतु अनंतगुण में चैतन्यत्व व्यापक रहकर वर्तता है, इस चितिशक्ति का फल ध्रुव उपादान के आश्रय से सभी गुणों की पर्यायों में निर्मलता का प्रारंभ होता है और वह क्षणिक उपादानरूप नयी शुद्धि है।

(3) अनाकार उपयोगमय दृशिशक्ति—शक्ति अर्थात् गुण त्रैकालिक है। सभी गुणों को धारण करनेवाला आत्मद्रव्य है, उसमें दृष्टि करने पर अनंतशक्तियाँ उछलती हैं, परिणमित होती हैं, स्वसन्मुखता से सहित होती हैं। परज्ञेयों का अवलंबन उसमें नहीं है।

साधकदशा में भूमिकानुसार दया-दान का राग आता है किंतु उसमें चैतन्य का परिणमन नहीं होने से उसे अन्यवस्तु-अनात्मा और अभूतार्थ कहकर उसे व्यवहार ज्ञेय में डाल दिया है। कारण कि वास्तव में दया-दानादिक का राग और राग का उपयोग अभूतार्थ है, अतः वह जीव का स्वरूप नहीं है। अनादि-अनंत एकरूप द्रव्य के ऊपर दृष्टि लगाने से प्रत्येक गुण की पर्याय द्रव्य-गुण-पर्याय में उछलती हैं। पर्याय एक अंश है, सर्वांश अर्थात् सारा द्रव्य नहीं है।

द्रव्य अकृत्रिम, गुण भी अकृत्रिम शाश्वत है, उसमें सर्वभेद गौण हैं। पराश्रयरहित एकरूप पूर्ण द्रव्य त्रैकालिक भूतार्थ है। उनके आश्रय से प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन, पश्चात् क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन, पश्चात् क्षायिक सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान और पूर्णशुद्धतारूप मोक्षदशा प्रगट होती है, ऐसा अपार अचिंत्य सामर्थ्य अंदर है। दृशिशक्ति के उपयोग में किसी का भेदरूप-विशेषरूप प्रतिभास नहीं है। उपयोग में परालंबी उपयोग का—व्यवहार का अभाव है, प्रत्येक गुण का व्यापार-कार्यस्वभाव उपयोग है, वह अपने कारण-कार्य से है; अन्य ज्ञेय है, इसलिये उपयोग है, ऐसा नहीं है।

दर्शन उपयोग में भी कर्म-ग्रहण का अभाव है। उपयोग कहीं बाहर से लाना पड़े, ऐसा नहीं है, उसका पर के द्वारा हरण नहीं है, शुद्धोपयोग स्वभावी उपयोग, वही आत्मा का उपयोग है। परसत्तावलंबी उपयोग बंध का कारण होने से वह आत्मा का उपयोग नहीं है, उसमें भेदरूप षट्कारकों का अभाव है। अनाकार अ=नहीं, आकार=स्व-पर ऐसे कोई भेद उसमें नहीं हैं। उसका विषय भी भेदरूप नहीं है। ऐसे दृशिशक्ति अनंत गुणों के साथ आत्मद्रव्य में है। नित्य सामान्य पर दृष्टि लगाने से, निश्चय परमात्मद्रव्य को ही एकरूप उपादेय-आश्रयरूप करने से स्वतंत्र स्वाश्रयी षट्कारक पराश्रय के अभावरूप स्वयमेव अनेकांत है। यह गहरी बात है,

तथापि अंदर में महिमा लाकर गहराई से पता लगाया जाये तो स्वयं परमात्मा हो जाता है।

आत्मा में दृशिशक्ति नामक गुण अनादि अनंत है, उसका क्षेत्र असंख्य प्रदेशी है, पर्याय का काल एक समय है, सत्तामात्र सर्वपदार्थ का सामान्य प्रतिभासरूप उपयोग होना, वह अपने कारण से है। जो जीव इस अनंत शक्ति के धारक चैतन्य-सूर्य में दृष्टि लगाते हैं, उन्हें जीवनज्योति जागती रहती है। आत्मावलोकन ग्रंथ में कहा है कि आत्मा में अद्‌भुत से भी अत्यंत अद्‌भुतता तो यह है कि जिससमय दृशिशक्ति द्वारा सामान्य अवलोकन उपयोग होता है, उसी समय साथ में ज्ञानगुण का उपयोग जो कि छद्मस्थ को (क्रमिक उपयोग) है, समस्त विशेष स्व-पर को स्पष्ट जानता है, फिर भी उसमें आश्चर्य नहीं है, पर की मदद नहीं है, न पुण्य-पाप—व्यवहार की मदद है और व्यवहार-राग को जानने जाये, ऐसा उपयोग आत्मा का स्वरूप नहीं है।

अहा, वस्तुस्थिति.... जिसप्रकार द्रव्य-गुण नित्य सामान्य एकरूप हैं, उनमें व्यवहार नहीं है, उसीप्रकार द्रव्याश्रय द्वारा जो अनंत गुण की पर्यायें उछलती-परिणमित हो रही हैं, उसमें भी व्यवहार का अंश जरा भी नहीं है। अज्ञानदशा में निर्मल श्रद्धा-ज्ञानादि का परिणमन नहीं था, किंतु जब अनंतगुणों के धारक अखंड ध्रुव आत्मद्रव्य को स्वसन्मुखता से लक्ष में लिया, तब से अनित्य उपादान में निर्मल श्रद्धा-ज्ञानादि का परिणमन पराश्रयरूप व्यवहार की अपेक्षा रहित होने लगा।

(4) **ज्ञानशक्ति—**साकार उपयोगमयी ज्ञानगुण भी स्वतंत्र व निरपेक्ष स्वभावी है। निश्चय स्व से है, ऐसा स्वीकार करने के बाद व्यवहार से ज्ञान कराया जाता है कि व्यवहार से सापेक्ष है; यदि स्वाश्रय में वर्तता हो तो यह अभूतार्थ का ज्ञान भी व्यवहार ज्ञेय है।

जिसमें है, वहाँ से आता है; नहीं है, वहाँ कहाँ से आये? प्राप्त की प्राप्ति है। पद्मनंदिपंचविंशति में कहा है कि भगवान ने अंदर का खजाना खोल दिया है, उसे कौन न ग्रहण करे! निमित्त है, वह व्यवहार है, किंतु स्व को न जाने, वहाँ तक उसे व्यवहार ज्ञेय कौन कहेगा? **प्रश्न:—**स्वाध्याय के समय पद्मपुराण क्यों नहीं लेते-समयसार क्यों पढ़ते हैं? **उत्तर:—**संयोगदृष्टिवान को ऐसा दिखता है किंतु ऐसा नहीं है। निमित्त भी उसके समय पर आता है, ज्ञान की जैसी योग्यता हो, वैसा ज्ञेय होता ही है। अरे, परलक्षी परिणमन आत्मा का

नहीं है, अक्षरों का अवलंबन लेनेवाला ज्ञान दिखता है, वह आत्मा का उपयोग नहीं है। निरालंबी द्रव्य-गुण-पर्याय है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है, वह स्व से है, निमित्त तथा व्यवहार से निरपेक्ष है, यह बात अज्ञानी को रुचिकर नहीं है।

वाणी का कर्ता आत्मा नहीं है, वाणी संबंधी ज्ञान का कर्ता आत्मा नहीं है; अक्षर-शास्त्रादिक का अवलंबन करे, वह उपयोग आत्मा का नहीं है। श्री अमृतचंद्राचार्य ने अजब-गजब की बात कही है। दुनियाँ तो तुझमें नहीं है किंतु उस संबंधी व्यवहारज्ञान भी तेरे स्वरूप में नहीं है। अरहंत-सिद्धभगवान जगत के द्रव्य हैं, उनका लक्ष छोड़कर निरपेक्ष तत्त्वदृष्टि द्वारा अंदर में आ, तब व्यवहारज्ञान व्यवहार से सच्चा है। ज्ञान-उपयोग के स्वाश्रयी परिणमन रूप उपयोग में पर का आधार-कर्ता-कर्म-करण नहीं है। रागादि व्यवहार का कारण या कार्य उसमें बिलकुल नहीं है। जैसे नित्य उपयोगवान जीव का मरण नहीं है, वैसे स्वाश्रयरूप उपयोगधारा-निजपरिणाम है, उसका भी नाश नहीं होता। रागादि हैं, वह सब निज परिणाम नहीं हैं।

शास्त्रों का ज्ञान आत्मा का उपयोग नहीं है। उपयोग तो उसे कहते हैं जिसमें पर का अवलंबन न हो। शास्त्र ने स्वसन्मुखता को 'मार्ग' कहा, वह उपयोग ने जान लिया, किंतु परलक्षवाला ज्ञान आत्मा का ज्ञान नहीं है। जिसमें स्व-पर विशेष प्रतिभासित होता है, उसे रागादि कोई निमित्त सहायक नहीं हैं। ऐसे स्वयमेव अनेकांत को प्रगट करनेवाली ज्ञानशक्ति आत्मद्रव्य में अनंत गुण के साथ परिणमित है।

आत्मा ही ज्ञान और सुखस्वरूप है

जयपुर शहर में जेष्ठ कृष्णा 6 से जेष्ठ शुक्ला दसमी, बीस दिन तक अध्यात्म-ज्ञान प्रचार का महान उत्सव हुआ, उससमय टोडरमल स्मारक भवन में पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का हजारों श्रोताओं ने लाभ लिया; उनमें से दो भाग पहले दिये जा चुके हैं। यहाँ तीसरा भाग दे रहे हैं।

प्रवचनसार के मंगलाचरण में पंचपरमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार करके, शुद्धोपयोगरूप साम्य की प्राप्ति करने को कहा है, क्योंकि शुद्धोपयोग ही मोक्ष के अतीन्द्रिय सुख का साधन है।

शुद्धोपयोगरूप चरित्र ही धर्म है। शुभराग का भी उसमें अभाव है।—ऐसे चारित्ररूप आत्मा स्वयं परिणमित होता है, जिससे आत्मा स्वयं चारित्र है। धर्मरूप परिणमित आत्मा स्वयं धर्म है।

शुभराग को चारित्र नहीं कहते, उसे धर्म भी नहीं कहते, वह तो मोक्ष में विघ्नरूप है। मुनि को शुभराग हो, तथापि उनका वह मुनिपना या चारित्र कहीं राग के द्वारा नहीं है।

चारित्र तो रागरहित साम्यभाव अर्थात् शुद्धोपयोग है, जितनी रागरहित शुद्धपरिणति हुई, उतना ही चारित्र है, उतना ही धर्म है तथा वही मोक्ष का कारण है।

जीव के मोह और राग-द्वेष रहित जो शुद्ध परिणाम है, वही धर्म है। राग के एक अंश का भी उसमें समन्वय नहीं।

धर्मात्मा को अपने आत्मा के साधने की ऐसी लगन है कि मैं एक ही हूँ, अन्य कुछ भी मेरे लिये नहीं है—इसप्रकार सर्वत्र अपने को ही मुख्य देखता है। स्व की अस्ति में पर की नास्ति करके, अन्य सभी ओर से दृष्टि-रुचि हटाकर अपने आत्मा की ही रुचि का पोषण करता है। इसी का नाम आत्मार्थिता है।

[काम एक आत्मार्थ का, अन्य नहीं मन रोग]

—ऐसी आत्मरुचि होने के पश्चात् ही चारित्र होता है। चारित्र अर्थात् आत्मा के आनंद में प्रवेश। आत्मा के आनंद में प्रवेश करने से जो वीतराग चारित्ररूप शुद्धभाव प्रगट हुआ, वही धर्म है, उसका राग में अभाव है।

परिणाम, वह आत्मा का स्वभाव है, उस परिणामरूप आत्मा स्वयं परिणमित होता है। आत्मा अपने परिणाम में उस समय तन्मय होकर परिणमन करता है, इसलिये शुद्ध-चारित्र परिणतिरूप हुआ आत्मा स्वयं ही चारित्र है। चारित्र पर्यायवाला आत्मा स्वयं चारित्र है, आत्मा का चारित्र राग में या नग्न शरीर में नहीं है।

देह से पृथक्, राग से पार जो अपना शुद्ध आत्मा है, उस ध्येय को धर्मी कभी भूलता नहीं, ऐसे आत्मा को ध्येय करने से अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है।

आत्मा सत् वस्तु है, वस्तु स्वयमेव परिणामस्वभाववान है। आत्मा के परिणाम तीन प्रकार के हैं—शुभ, अशुभ और शुद्ध। उनमें से जिस समय आत्मा जिस परिणामरूप परिणमित होता है, उस समय उस परिणाम के साथ उसकी तन्मयता है। उसमें से शुभ और अशुभ परिणति तो बंध का कारण अर्थात् संसार का कारण है, और शुद्धपरिणति वह धर्म है तथा मोक्ष का कारण है।

सर्वज्ञ की जिसे श्रद्धा हुई, उसे ज्ञान की रुचि हुई और जिसे ज्ञान की रुचि हुई, उसे राग की रुचि छूट गई अर्थात् संसार छूट गया, और मोक्षमार्ग खुल गया। अल्पकाल में उसे मोक्षदशा होगी। अब उसे अनंत भव नहीं होंगे। भगवान भी ऐसा ही देखते हैं कि यह जीव ज्ञानस्वभाव का आराधक हुआ है तथा अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा। इसप्रकार ज्ञान के निर्णय में मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ है।

जिसे ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा हुई, उसे केवलज्ञान की श्रद्धा हुई, क्योंकि केवलज्ञान तो ज्ञानशक्ति में है। तथा केवलज्ञान की श्रद्धा होते ही राग से भेदज्ञान हो गया। ज्ञानपर्याय ने जब अंतर्मुख होकर ज्ञानस्वभाव में प्रवेश किया, तब यह सब निर्णय हुआ और उसमें मोक्ष का पुरुषार्थ आ गया।

भगवान अरिहंतदेव के आत्मा का स्वरूप पहिचानकर तथा अपने आत्मा के साथ

उसका मिलान करने पर धर्मीजीव ऐसा जानता है कि—

— भगवान को पूर्ण ज्ञान है तथा राग किंचित् नहीं;

— मेरी अवस्था में ज्ञान अपूर्ण है और राग है, तथापि मेरा स्वभाव पूर्ण ज्ञानस्वभावी है, और यह राग वह मेरा स्वरूप नहीं। राग और ज्ञान दोनों भिन्न-भिन्न हैं—ऐसा अपने में भेदज्ञान होता है।

अरिहंत भगवान के आत्मा को जानने पर अपने आत्मा में—

— ज्ञानस्वभाव का स्वीकार होता है और
सर्व शुभाशुभभावों का निषेध होता है।

— रागादि परभावों का कर्तृत्व छूटता है, और
रागरहित चैतन्यभावरूप परिणमन होता है।

— इसप्रकार सर्वज्ञ अरिहंतदेव जैसा अपने आत्मस्वरूप का निर्णय करके अंतर्मुख होने पर निर्विकल्प स्वानुभूति द्वारा मोक्षमार्ग खुलता है।

'ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा भेद 'आत्मा' को बताता है।

'ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा भेद है, उसका भी लक्ष छोड़कर अभेद आत्मा की अनुभूति में जाना है।

'राग, वह आत्मा' ऐसा नहीं कहा, अथवा—

ज्ञान, वह राग—ऐसा नहीं कहा,

ज्ञान, वह शरीर—ऐसा नहीं कहा;

परन्तु समस्त परभावों का निषेध करके 'ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा कहकर शुद्ध आत्मा का लक्ष कराया है। जो इसप्रकार का लक्ष करता है, वह व्यवहार द्वारा परमार्थ को समझा कहा जाता है। इसप्रकार आचार्य भगवान ने शुद्ध आत्मवस्तु का अनुभव कराया है।

अंतर में निर्विकल्प आत्मवस्तु स्वयं विद्यमान है। उसको अनुभव में लेना अर्थात् अपना अनुभव करना, वह कहीं असंभव नहीं है। वह अनुभव कैसे हो ? यह बात समयसार

की 11वीं गाथा में बताई है। इस गाथा के भाव में जैनसिद्धांत के प्राण हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन से ही जैनधर्म का प्रारंभ होता है। उसकी रीति इसमें बताते है।

व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है,

शुद्धनय का विषय भूतार्थ है।

जो शुद्धनय द्वारा भूतार्थस्वभाव का अर्थात् शुद्धआत्मा का अनुभव करते हैं, वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। शुद्धनय की ऐसी अनुभूति ही सम्यग्दर्शन है, तथा वही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की एकमात्र रीति है, अन्य कोई रीति नहीं है।

— सम्यग्दर्शन में व्यवहारनय का आश्रय नहीं, क्योंकि व्यवहारनय जो बतलाता है, वह अभूतार्थ है।

— सम्यग्दर्शन में शुद्धनय का आश्रय है, क्योंकि वह भूतार्थस्वभाव को देखता है। भूतार्थ और शुद्धनय दोनों अभेद करके उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा है।

शुद्धनय का विषय ऐसा नहीं कि वह समझ में न आये। कदाचित् उसे वचनातीत कहा जाता है, लेकिन वह कहीं ज्ञानातीत नहीं; ज्ञानगम्य है। जिसे धर्म करना हो, आत्मा का स्वरूप समझना हो, उसे अंतर में राग से भिन्न अपना स्वरूप अनुभव में आ सकता है और वही शुद्धनय है। यहाँ उसे भूतार्थ कहकर उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा है। जितने भेदभंग के विकल्प हैं, वह कहीं सम्यग्दर्शन में नहीं, सम्यग्दर्शन में उन सबका निषेध है।

व्यवहार के जितने भी प्रकार हैं, वे सभी आत्मा के शुद्ध स्वभाव को नहीं बतलाते परंतु अभूतार्थ भाव को बताते हैं, जिससे उस नय को अभूतार्थ कहा है, और उसके बताये गये अभूतार्थभावों को अनुभव द्वारा शुद्ध आत्मा प्रतीति में नहीं आता अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन तो आत्मा के शुद्ध स्वभाव के अनुभव से ही होता है, और उस शुद्धस्वभाव को तो शुद्धनय देखता है। इसलिये शुद्धनय को भूतार्थ कहा है और उसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा है।

आत्मा को पर के संबंधवाला बतलाये, रागादि अशुद्धभाववाला बतलाये, या पर्यायभेद या गुणगुणी भेदों को पृथक् करके बतलाये—उन सब प्रकार के व्यवहार का आश्रय करने से शुद्ध आत्मा अनुभव में नहीं आता, विकल्प का ही अनुभव आता है, इसलिये वे सर्व व्यवहार

अभूतार्थ हैं—एक शुद्धनय ही भूतार्थ है, वह शुद्ध आत्मा को गुण-पर्याय के भेदरहित, रागरहित और पर के संबंधरहित अनुभव कराता है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीति क्या है, उसकी यह बात है। सम्यग्दर्शन तो अबंधभाव है, मोक्ष का कारण है, उसने अंतर में राग से पार वीतरागी अमृत-सागर देखा है, इसके अतिरिक्त अन्य कहीं उसे प्रेम नहीं—आत्मबुद्धि नहीं। सम्यग्दृष्टि की परिणति अति गंभीर हैं। बाह्यसंयोग और शुभाशुभभाव होने पर भी उनके ध्येय में तो अखंड शुद्ध आत्मा ही वर्तता है। निर्विकल्प अनुभूति के आनंद का उसने वेदन कर लिया है। अहा, ऐसा चैतन्यतत्त्व! ऐसे तत्त्व को अंतर में देखना ही सम्यग्दर्शन है। उसकी रीति श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस सूत्र में बतलायी है। जैनदर्शन के गंभीरभाव इस गाथा में भरे हुए हैं।

* * *

यह प्रवचनसार की 13वीं गाथा है।

आत्मा के परम सुख के लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कर्तव्य है। उसके लिये रागादि के साथ की तन्यमता तोड़कर ज्ञानानंदस्वरूप में परिणति को जोड़ना, वह प्रथम कर्तव्य है। ऐसा करने से ही अंतर में से परम शांति का रस आता है।

सम्यग्दर्शन के उपरांत चारित्रदशा में निर्विकल्प शुद्धोपयोग, वह अनंत आनंदरूप केवलज्ञान का कारण है। अहा, जिन्हें शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान प्रसिद्ध हुआ है, उनके सुख की क्या बात? वह सुख आत्मा में से ही उत्पन्न है, तथा इन्द्रियों से पार है, अनुपम है, अनंत है, और विच्छेदरहित है। अहा, आत्मा के ऐसे सुख की प्रतीति करने से आत्मा के स्वभाव की प्रतीत होती है, और बाह्य में से सुखबुद्धि छूट जाती है।

देखो, ऐसे सुख का साधन शुद्धोपयोग है, दूसरा कोई साधन नहीं। शुद्धोपयोग में ही अपने ज्ञानस्वभाव का अवलंबन है, इसलिये अपने असाधारण ज्ञानस्वभाव को ही कारणरूप ग्रहण करने से केवलज्ञान और परम सुख प्रगट होता है।

आत्मस्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी को सुख का कारण मानना, वह तो संसारतत्त्व है। मिथ्यात्व, वह संसारतत्त्व है। कोई जीव भले ही पंचमहाव्रतादिक का पालन करे तथापि जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ संसारतत्त्व है, और वही जीव दुःखी है।

आत्मा का अतीन्द्रिय सुख, वही सच्चा सुख है, और ऐसा सुख शुभाशुभ उपयोग छोड़ने से प्राप्त किया जा सकता है। जो शुभाशुभ को ही कर्तव्य मानते हैं, वे कभी भी आत्मा का सुख नहीं पा सकते। शुभाशुभ को छोड़कर और शुद्धोपयोग को आत्मसात् करके केवली भगवान अनंत आत्मसुख को प्राप्त हुए हैं। उस शुद्धोपयोग के फल की प्रशंसा करके आचार्यदेव भव्य को उसमें प्रेरित करते हैं। अहो, ऐसे सुख की बात सुनते ही भव्यजीव को उत्साह आता है कि वाह! ऐसे सुख के कारणरूप शुद्धोपयोग ही मेरा कर्तव्य है। शुद्धोपयोग द्वारा होनेवाला ऐसा अतीन्द्रिय सुख ही मेरे लिये सर्वथा प्रार्थनीय है, इसके अतिरिक्त संसार में अन्य कोई पुण्य या उसके फलरूप स्वर्गादि भी इच्छा करने के योग्य नहीं है, क्योंकि उनमें कहीं आत्मा का सुख नहीं। पुण्य में मग्न जीव भी आकुलता की अग्नि में जल रहे हैं, और दु:खी हैं। शुद्धोपयोगी जीव ही सुखी हैं।

शुद्धोपयोगरूप हुआ आत्मा ही धर्म है, वही सुख है। वह केवलज्ञान और मोक्ष को साधता है। उसकी प्राप्ति के हेतु चेतना से भिन्न ऐसे अशुभ और शुभ सर्व कषायभाव अपास्त करनेयोग्य हैं, छोड़नेयोग्य हैं।

मैं तो जगत का साक्षी, स्वयं सुख का पिण्ड हूँ, उसमें आकुलता कैसी? अपने सुख के अनुभव के लिये मैं किसी अन्य को ग्रहण करूँ या किसी को छोड़ूँ—ऐसा मेरे स्वभाव में है ही नहीं। बाह्य पदार्थ मुझसे सदैव भिन्न तथा पृथक् ही हैं, उनका ग्रहण-त्याग मुझमें नहीं है। ज्ञान और सुखस्वरूप मेरा आत्मा है, जब उसमें उपयोग की एकाग्रता हुई, वहाँ शुभाशुभ भी छूट जाता है और परम वीतराग सुख का अनुभव ही रहता है। अहो, ऐसी शुद्धोपयोगदशा ही परम प्रशंसनीय है।

मुनिधर्म तो शुद्धोपयोगरूप है, कहीं रागरूप मुनिधर्म नहीं; पंडित टोडरमलजी मुनि का स्वरूप बातते हुए लिखते हैं कि—जो वीतरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, अंतर में शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं—ऐसी मुनिदशा है। ऐसी मुनिदशा हुए बिना मोक्ष नहीं होता। अहा, धन्य उनका अवतार! धन्य उनका जीवन! वे मुनि परद्रव्य में अहंबुद्धि धारण नहीं करते अर्थात् शरीरादि पर की क्रिया को अपनी नहीं मानते, ज्ञानादिक स्वभाव को ही अपना मानते हैं। रागादि परभावों में

ममत्व नहीं करते। शुभराग होता है, उसे भी हेय जानकर छोड़ना चाहते हैं। अशुभ में और शुभ में—दोनों में आकुलता के अंगारे हैं, चैतन्य की शांति तो शुद्धोपयोग में ही है।

अहो, आत्मा का सुख जो कि राग से पार है, उसका स्वाद जीव ने पहले कभी अनादि संसार में नहीं लिया। सम्यग्दर्शन हुआ, तब आत्मा के अनुभव में उस अपूर्व आह्लादरूप सुख का स्वाद प्रथम बार ही आया। और पश्चात् उसमें लीनता द्वारा शुद्धोपयोग से केवलज्ञान होने पर वह सुख अतिशयरूप से अनुभव में आया। संपूर्ण सुख का समुद्र उल्लसित हुआ; उस सुख की क्या बात! कुन्दकुन्दसवामी जैसे संत जिसकी प्रशंसा करते हैं, वैसा सुख आत्मा के स्वभाव में भरा हुआ है। अरे, प्रसन्नता से उसकी प्राप्ति तो करो। प्रतीत करने से वह प्रगट होगा। नास्ति में से अस्ति कहाँ से आयेगी? सत् है–उसकी अस्ति का स्वीकार करने पर अनुभव में आयेगा।

धर्मात्मा अपने स्वभावसुख की प्रतीति करके उसमें ऐसे मग्न हो गये हैं कि उसमें से बाहर आना भी उन्हें नहीं रुचता, शुभ में आना पड़े, वह भी उन्हें दु:ख भासित होता है, वहाँ अशुभ की तो बात ही क्या? अरे, कहाँ चैतन्य के परम आह्लाद की शांति, और कहाँ शुभाशुभराग की आकुलता? अतीन्द्रिय आनंद की फसल आत्मा के खेत में ही होती है। अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति का स्थान यह चैतन्यक्षेत्र ही है। अन्य किसी जगह वह नहीं होता। सर्वप्रथम उसकी श्रद्धा के बीच वो तो परम आनंदफल पकेगा। भाई, यह सब तुझमें ही है। तेरा आत्मा ही ऐसा सुखस्वरूप है... परमशांति का पिंडरूप तू अपने आत्मा को देख... अनुभव कर... यही सच्चा सुख है, और यही प्रशंसनीय एवं प्रार्थनीय है।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथाएँ

सम्यक् सहित आचार ही संसार में एक सार, है—
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिये,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिये॥

अपने शुद्धात्मा को अनुभूतिपूर्वक निःशंक श्रद्धा जिसे हुई है, उस धर्मात्मा के सम्यग्दर्शन में निःशंकतादि आठों निश्चय अंग समा जाते हैं; उनके साथ व्यवहार आठ अंग भी होते हैं। यद्यपि सभी सम्यग्दृष्टि जीव निःशंकतादि आठ गुण सहित होते हैं, परंतु उनमें से एक-एक अंग के उदाहरणरूप अंजन चोर आदि की कथा प्रसिद्ध है; उनके नाम रत्नकरंडश्रावकाचार में समंतभद्र स्वामी ने निम्न भाँति लिखे हैं।

अंजन निरंजन हुए उनने नहीं शंका चित धरी॥1॥
बाई अनंतमती सती ने विषय आशा परिहरी॥2॥
सज्जन उदायन नृपति वरने ग्लानि जीती भाव से॥3॥
सत्-असत् का किया निर्णय रेवती ने चाव से॥4॥
जिनभक्तजी ने चोर का वह महादूषण ढंक दिया॥5॥
जय वारिषेणमुनीश मुनि के चपल चित को थिर किया॥6॥
सु विष्णुकुमार कृपालु ने मुनिसंघ की रक्षा करी॥7॥
जय वज्रमुनि जयवंत तुमसे धर्ममहिमा विस्तरी॥8॥

मुमुक्षुओं में सम्यक्त्व की महिमा जागृत करें और आठ अंग के पालन में उत्साह प्रेरित करें, इसलिये इन आठ अंगों की आठ कथायें यहाँ क्रमबार दी जायेंगी; उनमें प्रथम कथा यहाँ दी जा रही है।

(1) निःशंकित अंग में प्रसिद्ध अंजन चोर की कथा

अंजन चोर! वह कहीं प्रारंभ से ही चोर नहीं था; वह तो उसी भव से मोक्ष पानेवाला एक राजकुमार था। उसका नाम था ललितकुमार। अब तो वह निरंजन भगवान है, परंतु लोग उसे अंजन चोर के नाम से पहचानते हैं।

उस राजकुमार को दुराचारी जानकर राज्य में से निकाल दिया था। उसने एक ऐसा अंजन सिद्ध किया जिसके आँजने से स्वयं अदृश्य हो जाय; उस अंजन के कारण उसे चोरी करना सरल हो गया, और वह अंजन चोर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चोरी के अलावा जुआ और वेश्या सेवन का महान पाप भी वह करता था।

एकबार उसकी प्रेमिका स्त्री ने रानी का सुंदर रत्नहार देखा और उस हार के पहनने की उसकी इच्छा हुई। जब अंजन चोर उसके पास आया, तब उसने कहा कि यदि तुम्हें मेरे ऊपर सच्चा प्रेम है, तो मुझे वह रत्नहार लाकर दो।

अंजन बोला—देवी! मेरे लिये तो यह तुच्छ बात है,—ऐसा कहकर वह तो चौदश की अँधेरी रात में ही राजमहल में घुस गया और रानी के गले में से हार निकालकर भाग गया।

रानी का अमूल्य हार चोरी चले जाने से चारों तरफ हाहाकार मच गया। सिपाही लोग दौड़े, उन्हें चोर तो दिखाई नहीं पड़ता था परंतु उसके हाथ में पकड़ा हुआ हार अँधेरे में जगमगा रहा था। उसे देखकर सिपाहियों ने उसका पीछा किया। पकड़े जाने के भय से हाथ का हार दूर फेंककर अंजन चोर भागा... और स्मशान में जा पहुँचा। थककर एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया; वहाँ एक आश्चर्यकारी घटना उसने देखी। वृक्ष के ऊपर छींका टांगकर एक पुरुष उस पर चढ़-उतर रहा था और कुछ पढ़ भी रहा था। कौन है यह मनुष्य? और ऐसी अंधेरी रात में यहाँ क्या करता है?

[पाठक! चलो, अंजन चोर को यहाँ थोड़ी देर खड़ा रखकर हम इस अनजान पुरुष का परिचय प्राप्त करें।]

अमितप्रभ और विद्युतप्रभ नाम के दो देव पूर्व भव के मित्र थे। अमितप्रभ तो जैन धर्म का भक्त था, और विद्युतप्रभ अभी कुधर्म को मानता था। एक समय वह धर्म की परीक्षा के

लिये निकला। एक अज्ञानी तपसी को तप करते देखकर उसकी परीक्षा करने के लिये उससे कहा; अरे बाबाजी! पुत्र बिना सद्गति नहीं होती—ऐसा शास्त्र में कहा है—यह सुनकर वह तपसी तो खोटे धर्म की श्रद्धा से वैराग्य छोड़कर संसार-भोगों में लग गया; यह देखकर विद्युतप्रभ ने उस कुगुरु की श्रद्धा छोड़ दी।

फिर उसने कहा कि अब जैन गुरु की परीक्षा करनी चाहिए। तब अमितप्रभ से उसने कहा—मित्र! जैन साधु परम वीतराग होते हैं; उनकी तो क्या बात! उनकी परीक्षा तो दूर रही—परंतु यह जिनदत्त नाम का एक श्रावक सामायिक की प्रतिज्ञा करके अँधेरी रात में इस स्मशान में अकेला ध्यान कर रहा है, उसकी तुम परीक्षा करो।

जिनदत्त की परीक्षा करने के लिए उस देव ने अनेक प्रकार से भयानक उपद्रव किये, परंतु जिनदत्त सेठ तो सामायिक में पर्वत की तरह अडिग ही रहा; अपने आत्मा की शांति से वह किंचित् मात्र विचलित नहीं हुआ। अनेक प्रकार के भोग-विलास बताये किंतु उनमें भी वह नहीं लुभाया। एक जैन श्रावक में भी ऐसी अद्भुत दृढ़ता देखकर वह देव अत्यंत प्रसन्न हुआ; पश्चात् सेठ ने उसे जैनधर्म की महिमा समझाई कि देह से भिन्न आत्मा है, उसके अवलंबन से जीव अपूर्व शांति का अनुभव करता है और उसके ही अवलंबन से मुक्ति प्राप्त करता है। इससे उस देव को भी जैनधर्म की श्रद्धा हुई और सेठ का उपकार मानकर उसे आकाशगामिनी विद्या दी।

उस आकाशगामिनी विद्या से सेठ जिनदत्त प्रतिदिन मेरु तीर्थ पर जाता और वहाँ अद्भुत रत्नमय जिनबिंब तथा चार ऋद्धिधारी मुनिवरों के दर्शन करता, इससे उसे बहुत आनंद प्राप्त होता था। एकबार सोमदत्त नामक माली के पूछने पर सेठ ने उसे आकाशगामिनी विद्या की सारी बात बताई और रत्नमय जिनबिंब का बहुत बखान किया। यह सुनकर माली को भी उनके दर्शन करने की भावना जागृत हुई और आकाशगामिनी विद्या सीखने के लिए सेठ से निवेदन किया। सेठ ने उसे विद्या साधना सिखा दिया, तद्नुसार अंधेरी चतुर्दशी की रात में स्मशान में जाकर उसने वृक्ष पर छींका लटकाया और नीचे जमीन पर तीक्ष्ण नोंकदार भाला गाड़ दिया। अब आकाशगामिनी विद्या को साधने के लिए छींके में बैठकर, पंच नमस्कार मंत्र आदि मंत्र बोलकर उस छींके की डोरी काटनेवाला था परंतु नीचे भाला देखकर उसे भय लगने

लगता था, और मंत्र में शंका होने लगती थी कि यदि कहीं मंत्र सच्चा न पड़ा और मैं नीचे गिर गया तो मेरे शरीर में भाला घुस जायेगा! इसप्रकार सशंक होकर वह नीचे उतर जाता; और फिर यह विचार करके कि सेठ ने जो कहा है, वह सत्य ही होगा! यह सोचकर फिर जाकर छींके में बैठ जाता। इस तरह बारंबार वह छींके में चढ़-उतर कर रहा था; किंतु नि:शंक होकर वह डोरी काट नहीं पाता था।

(जैसे चैतन्यभाव की नि:शंकता बिना शुद्ध-अशुद्ध विकल्पों के बीच झूलता हुआ जीव निर्विकल्प अनुभवरूप आत्मविद्या को नहीं साध सकता, वैसे ही उस मंत्र के संदेह में झूलता हुआ वह माली मंत्र को नहीं साध पाता था।)

इतने में अंजन चोर भागता हुआ वहाँ आ पहुँचा और माली को विचित्र क्रिया करते देखकर उससे पूछा—हे भाई! ऐसी अँधेरी रात में तुम यह क्या कर रहे हो? सोमदत्तमाली ने उसे सब बात बताई। वह सुनते ही उसको उस मंत्र पर परम विश्वास जम गया, और कहा कि लाओ! मैं यह मंत्र साधूँ। ऐसा कहकर श्रद्धापूर्वक मंत्र बोलकर उसने नि:शंक होकर छींके की डोरी काट दी... आश्चर्य! नीचे गिरने के बदले बीच में ही देवियों ने उसे साध लिया... और कहा कि मंत्र के ऊपर तुम्हारी नि:शंक श्रद्धा के कारण तुम्हें आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो गई है; अब आकाशमार्ग से तुम जहाँ जाना चाहो जा सकते हो।

अब अंजन चोरी छोड़कर जैनधर्म का भक्त बन गया; उसने कहा कि जिनदत्त सेठ के प्रताप से मुझे यह विद्या मिली है, इसलिये जिन भगवान के दर्शन करने वह जाते हैं, उन्हीं भगवान के दर्शन करने की मेरी इच्छा है।

(बंधुओं, यहाँ एक बात विशेष लक्ष में लेने की है : जब अंजन चोर को आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई, तब उसे चोरी का धंधा करने के लिए उस विद्या का उपयोग करने की दुर्बुद्धि उत्पन्न नहीं हुई, किंतु जिनबिंब के दर्शनादि धर्मकार्य में ही उसका उपयोग करने की सद्बुद्धि पैदा हुई... यही उसके परिणामों का परिवर्तन सूचित करता है और ऐसी धर्मरुचि के बल से ही आगे चलकर वह सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करता है।)

विद्या सिद्ध करने पर अंजन ने विचार किया कि अहा! जिस जैनधर्म के एक छोटे से मंत्र से मुझ जैसे चोर को भी ऐसी विद्या सिद्ध हुई, तो वह जैनधर्म कितना महान होगा! उसका

स्वरूप कितना पवित्र होगा! चलो, जिन सेठ के प्रताप से मुझे यह विद्या मिली, उन्हीं सेठ के पास जाकर मैं उस धर्म का स्वरूप समझूँ। और उन्हीं के पास से ऐसा मंत्र सीखूँ कि जिससे मोक्ष की प्राप्ति होवे—ऐसा विचारकर विद्या के बल से वह मेरुपर्वत पर पहुँचा। वहाँ रत्नों की अद्‌भुत अरिहंत भगवंतों की वीतरागता देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। जिनदत्त सेठ उस समय वहाँ मुनिवरों का उपदेश सुन रहे थे। अंजन ने उनका बहुत उपकार माना और मुनिराज का उपदेश सुनकर शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर उसकी निःशंक श्रद्धापूर्व निर्विकल्प अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, इतना ही नहीं, पूर्व पापों का पश्चाताप करके उसने मुनिराज के पास दीक्षा ले ली; साधु होकर आत्मध्यान करते-करते उसे केवलज्ञान प्रगट हो गया; और अंत में कैलाशगिरि से मोक्ष प्राप्त करके सिद्ध हो गए... 'अंजन' के स्थान पर वह 'निरंजन' बन गए। उन्हें नमस्कार हो।

(यह कथा जैनधर्म की निःशंक श्रद्धा करके उसकी आराधना का पाठ हमें पढ़ाती है।)

(आध्यात्मिक भजन)

जब निज आतम अनुभव आवै, तब और कछु न सुहावै।
रस नीरस हो जात ततच्छिन, अक्ष-विषय नहिं भावै ॥1॥
गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै, पुद्‌गल प्रीति नशावै ॥2॥
राग-द्वेष जुग चपल पक्ष जुत, मन पक्षी मर जावै ॥3॥
ज्ञानानंद सुधारस उमगै, घट अंतर न समावै ॥4॥
'भागचंद' ऐसे अनुभव को हाथ जोरि सिर नावै ॥5॥

सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप समझने की सुगम पद्धति

[पंचास्तिकाय गाथा 8के प्रवचन से]

[सूक्ष्मता से लक्षण द्वारा वस्तु का तत्त्व (स्वरूप) के समझने पर स्पष्टतया प्रतीति प्रसिद्धि और भाव-भासन होता है। अपनी पर्याय के लिये पर के सन्मुख देखने की आवश्यकता नहीं है। आत्मभूत लक्षण के ज्ञान द्वारा पराश्रय की श्रद्धा छूटकर स्वाश्रयरूप निर्मल भेदज्ञान होता है। आंशिक निश्चयधर्म-वीतरागभाव चतुर्थ गुणस्थान से प्राप्त होने लगता है।]

प्रत्येक द्रव्य में नित्य-अनित्यरूप अनेक धर्म पाये जाते हैं। वस्तु का स्वरूप-अस्तित्व सदा स्व से है, पर से नहीं है—ऐसी स्वभावदृष्टि सहित स्वीकार करके सभी द्रव्यों में स्वअस्तित्व-सत्तागुण की अपेक्ष संग्रहनय से देखने पर महासत्ता एक है, उसमें सबका स्वरूप अस्तित्व पृथक्-पृथक् ही है। महासत्ता द्रव्य का एक विशेषण है, वह कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। महासत्ता एक होने पर उसकी प्रतिपक्ष-अवांतर सत्ता अनेक हैं। यहाँ स्वरूप का अर्थ—स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव से प्रत्येक वस्तु का स्वरूप स्व-अस्तित्व से है, पर से नहीं है, पररूप में नहीं है, ऐसा जानना।

द्रव्य सत्, गुण सत्, और प्रत्येक समय नई-नई होनेवाली पर्याय भी सत् है; सामान्य द्रव्य और गुण है, वह नित्य शक्तिरूप होने से द्रव्यार्थिकनय का विषय है और पर्याय, वह उत्पाद-व्ययरूप अनित्य क्षणिक व्यक्ति होने से पर्यायार्थिक का विषय है। उसमें कारण-कार्य की सूक्ष्मता है। पर्याय के कारण से पर्याय है, ध्रुव के कारण से ध्रुव है। किंतु ऐसा नहीं है कि यह है तो दूसरे का अस्तित्व है।

प्रत्येक चेतन द्रव्य के चतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) सदा अरूपी होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (-गुण की क्रिया) सदा अरूपी हैं, अतीन्द्रिय ग्राह्य हैं और उसके सप्रतिपक्ष पुद्‌गलद्रव्यों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टय सदैव रूपी होने से (जीव के रूपवाला न होने से) सदा रूपी है; छह द्रव्यों में एक पुद्‌गलद्रव्य रूपी है, शेष द्रव्य अरूपी हैं।

प्रत्येक जीव-अजीव अपने से ही स्वद्रव्य-गुण-पर्याय में एक-अनेक और नित्य-अनित्यरूप से हैं। ऐसा होना पर के कारण नहीं है, न पूर्व पर्याय के कारण वर्तमान में है। आत्मा का ज्ञानगुण भी नित्य परिणामी है, अतः निरंतर ज्ञान की पर्याय ज्ञान से है, श्रद्धा गुण की पर्याय श्रद्धा से, सुखादि गुण की पर्यायें सब अपने-अपने अनुरूप अपने से हैं। ऐसा नहीं है कि पर के द्वारा उनका अस्तित्व है। इन कथनों का सार तो यह है कि पर से पृथक्ता और अपने ज्ञानानंदमय स्वरूप से अभिन्नता-पूर्णता है; उसे जानकर पर में कर्तृत्व-ममत्व माननेरूप अथवा ज्ञातापन की अरुचि, राग करने की रुचिरूपी मिथ्यात्व छोड़ना चाहिये। और वह मिथ्यात्वरूपी महापाप छोड़ने के लिये सर्वप्रथम प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र स्व से है, पर से नहीं है—ऐसा स्पष्ट भावभासनरूप अनुभव करे तो स्वाश्रयमय अपूर्वदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है।

भगवान आत्मा अपनी चैतन्यप्रभुता से सदा परिपूर्ण है, अखंड है, इसप्रकार अंतरदृष्टि होते श्रद्धा-ज्ञानादिक गुण की पर्याय सम्यक् हुई, यह नियम है, किंतु ऐसा नहीं है कि सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई; इसलिये सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट हुई, किंतु स्वद्रव्य का आश्रय होते ही एकसाथ अनंतगुणों की अनंतपर्यायें स्वाश्रय के अनुसार परिणमित होती हैं।

सब पर्यायें अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार अपनी योग्यता से हैं, पर के कारण नहीं हैं, ऐसा प्रथम स्वीकार करे तो निमित्त के ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। उपादान के लक्ष्य सहित निमित्त का ज्ञान कराने के लिये निमित्त की मुख्यता से कथन होता है किंतु ऐसा कभी भी नहीं है कि निमित्त की मुख्यता से किसी का काम होता हो; अतः निमित्त होने पर भी निमित्त से कार्य नहीं हुआ, कार्य तो उपादान से ही होता है, यह नियम है। पर से कार्य हुआ—ऐसा कथन उपचार-व्यवहारनय का है। निमित्त, उपादानकारण की प्रसिद्धि करता है। कोई जीव व्यवहार कथन को निश्चय के अर्थ में मान ले तो वह स्वतंत्र सत् का नाश करनेवाला अर्थात् कुदृष्टि है।

सर्वज्ञ भगवान ने अपने रागरहित ज्ञान में शब्द, अर्थ और ज्ञान का अस्तित्व स्पष्ट जाना है, प्रत्येक का अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं। ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान के कारण दिव्यध्वनि है। प्रत्येक वस्तु के कार्यकाल में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व अपनी शक्ति से है, अन्य तो निमित्तमात्र हैं। सबकी स्वतंत्रता समझे बिना, स्वसन्मुखदृष्टि किये बिना, उसके माने हुए व्रत, तप, जप, दया, दानादिक के शुभभाव व्यवहारसाधन भी नहीं कहलाते।

ऐसी भी पराधीनता नहीं है कि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान की पर्याय हुई है। ऐसा भी नहीं है—कि जड़कर्म में कुछ हुआ, इसलिये ज्ञान में हीनाधिकता हुई है। जहाँ निमित्त से व्यवहार कथन हो, वहाँ उपादान-वस्तु की योग्यता कैसी है, यह बतलाना है। ऐसा नहीं है कि वाराणसी गया तो वह बड़ा पंडित हुआ, काशी क्षेत्र से ज्ञान नहीं हुआ, ज्ञान तो ज्ञान से हुआ है। पूर्व पर्याय से, जड़कर्म से, राग से, वाणी से या गुरु से ज्ञान नहीं हुआ है, निमित्त तो निमित्तमात्र हैं, दूर ही हैं। एक द्रव्य में दूसरे का प्रवेश नहीं है। ऐसा नहीं है कि शिक्षक होशियार होने से शिष्य को ज्ञान हुआ। पर से कुछ नहीं आता; जैसे पत्थर में मीठापन नहीं है, उसे कौन दे ? और शक्कर में मीठापन है तो उसे कौन देता है ? आत्मा वाणी का कर्ता नहीं प्रेरक भी नहीं है; वाणी की अवस्था पुद्‌गल परमाणु से हुई है, ज्ञान की अवस्था अपनी योग्यता से ज्ञान के कारण हुई।

आत्मा भी नित्य-अनित्य स्वभाववाला सामान्य-विशेष धर्म सहित है। उसमें नय-विभाग द्वारा गौण-मुख्य करके अपना नित्य चिदानंदघन पूर्ण है, वह निश्चय परमात्मा है, जो आश्रय करने के अर्थ में उपादेय है। अंदर से स्वाश्रय के द्वारा निर्मल पर्याय प्रगट होती है, वह प्रगट करने के अर्थ में उपादेय है, शेष सब जानने के अर्थ में उपादेय है। एक समय में तीन अंश हैं—उत्पाद उत्पाद से है, व्यय, व्यय से है, ध्रुव, ध्रौव्यत्व से है। ऐसा नहीं है कि अनित्य पर्यायें हैं, इसलिये ध्रुव है। एक पर्याय दूसरी पर्याय से नहीं है। यहाँ लक्षणदृष्टि से सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का कथन है, सूक्ष्मता से स्वतंत्र वस्तु समझने से भावभासनरूप स्पष्टज्ञान-पक्का ज्ञान होता है।

प्रश्न—यदि ऐसा माना जाये कि रागादि विकार को जीव करता है, तो उसे स्व से सत् मानने से विकार वह जीव का स्वभाव हो जायेगा; अत: रागादि पर के कारण होता है, ऐसा माना जाये तो ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि विकारी अशुद्धदशा जीव की अनित्य पर्याय का स्वभाव है, अशुद्ध निश्चयनय से वह जीव का स्वतत्त्व है; पंचास्तिकाय गाथा 6 में कहा है कि अशुद्धत्व में भी कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण छहों कारक स्वतंत्र हैं। अपनी पर्याय में चारित्रगुण की अशुद्ध उपादानरूप रागादि पर्याय स्वतंत्र है, उसे निश्चय से-स्व से सापेक्ष और पर से निरपेक्ष-अहेतुक माने तो व्यवहार से परसापेक्ष कहा जाता है।

ऐसा नहीं है कि जीव में दर्शन–ज्ञानपर्याय है, इसलिये रागपर्याय है। ज्ञानांश–रागांश एक साथ एक काल में अपनी–अपनी स्वतंत्र योग्यता से ही हैं, किंतु ऐसा नहीं है कि निमित्त है तो राग है, ज्ञान है तो राग है या राग है तो ज्ञान है। ज्ञान के कारण ज्ञान है, राग के कारण राग है, और देहादि पुद्गल अथवा जीव में जो क्षेत्रांतररूप क्रिया दिखाई देती है, वह भी स्वतंत्र अपनी–अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण हैं। उससे विरुद्ध मानना छह काय की हिंसा है।

संयोगदृष्टिवान जीव स्वाश्रयज्ञान का तिरस्कार करते हैं। राग की कर्तृत्वबुद्धि होने से रागादि संयोगीभाव की रुचि और महिमा करते हैं। उसे कभी अंतर्मुख स्वतत्त्व की महिमा आती नहीं। संयोग की ओर से देखनेवाला या औदयिकभाव के भरोसे देखनेवाला ज्ञानी की पहिचान नहीं कर सकता, गृहस्थदशा देखकर ज्ञानी का और ज्ञान का तिरस्कार करते हैं, तब सम्यग्दृष्टि जीव तो नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्वभाव से ही परिणमन करनेवाला होने से किसी भी राग को करनेयोग्य नहीं मानता। चारित्रदोष जितना राग हुआ, उस समय भी ज्ञानी की दृष्टि रागादि में नहीं है, देहादि, रागादि से भिन्न मैं ज्ञान हूँ, अत: वह सर्वत्र ज्ञान की ही प्रसिद्धि करता हुआ अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानता है। राग होने पर राग की रुचि नहीं है। राग, राग का है। ज्ञानी राग में नहीं हैं, ज्ञान में ही हैं। ऐसे निर्मल भेदविज्ञान से प्राप्त नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्व से ज्ञानी रागादि सर्व व्यवहार–भावों से मुक्त हैं।

स्वानुभव की किरण में मोक्षमार्ग

स्वानुभवरूपी सूर्य की किरण से ही मोक्षमार्ग दिखता है। जहाँ स्वानुभव की किरण नहीं, वहाँ मोक्षमार्ग दिखता नहीं। राग तो अंधकारमय बंधभाव है, उससे मोक्षमार्ग कहाँ से सधेगा? अरे, बंधभाव व मोक्षमार्ग के बीच भी जिसको विवेक नहीं है, उसको शुद्धात्मा का वीतरागी संवेदन कहाँ से होगा? और स्वानुभव की किरण फूटे बिना मोक्षमार्ग का प्रकाश कहाँ से होगा? पुण्य–राग की रुचिवालों को स्वानुभव की कणिका भी नहीं है, तब मोक्षमार्ग कैसा? स्वानुभव के सिवाय अन्य जो कोई भाव करे, वे सब भाव बंधभाव में हैं, वह कोई भाव मोक्षमार्ग में नहीं आते और न उनसे मोक्षमार्ग सधता है। स्वानुभवरूपी सूर्य का उदय हो, तभी मोक्षमार्ग सच्चा।

विविध समाचार

ललितपुर (उ.प्र.) में पर्यूषण पर्व के अवसर पर अपूर्व आध्यात्मिक प्रवचन

[तारीख 26-8-71 से 4-9-71 तक]

इस वर्ष पर्यूषण पर्व में श्री पंडित हिम्मतभाई बम्बईवालों के पधारने से ललितपुर नगर में 10 दिन तक एक नवीन धार्मिक वातावरण छाया रहा। श्री पंडित हिम्मतभाई तारीख 25 के शाम को बम्बई से ललितपुर पधारे। स्टेशन पर समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। श्री हजारीलालजी टडैया के निवासस्थान पर आपके रहने की व्यवस्था की गई थी। प्रतिदिन 4 बार आपके प्रवचन होते थे। सवेरे 9.00 से 10.00 बजे तक तत्त्वार्थसूत्र पर तथा सायंकाल 3.00 से 4.00 बजे तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर दिगम्बर जैन नये मंदिरजी में और रात्रि को 9.00 से 10.00 बजे तक उत्तम क्षमादि धर्मों पर तथा श्री समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार पर दिगम्बर जैन बड़ा मंदिरजी की धर्मशाला में आपके प्रवचन होते थे। दिगम्बर जैन तारणपंथी बंधुओं के निवेदन पर प्रतिदिन प्रातः 8.00 से 9.00 बजे तक श्री दिगम्बर जैन तारणतरण चैत्यालय में भी आपके प्रवचन होते थे। प्रत्येक प्रवचन में करीब दो हजार की संख्या में स्त्री-पुरुष उपस्थित रहते थे। ललितपुर में दिगम्बर जैन समाज के करीब 1000 घर हैं और अच्छे-अच्छे जैन विद्वानों तथा डॉक्टर वकीलों का यह नगर है। पंडितजी के प्रवचनों से सब लोग अत्यंत प्रभावित हुए; महिला समाज में भी अच्छी जागृति आयी। दोपहर में 2.00 से 3.00 बजे तक का समय तत्त्वचर्चा एवं शंका-समाधान के लिये रखा था।

पंडितजी कठिन से कठिन प्रश्नों का उत्तर भी अपनी सचोट शैली में देते थे और शंकाओं का समाधान बड़े ही सरल ढंग से करते थे। लोग कहते थे कि हमने यह बात अब तक सुनी ही नहीं थी; पंडितजी के आने से हमें यथार्थ तत्त्वदृष्टि प्राप्त हुई है। इसप्रकार दस दिन तक निरंतर अध्यात्म का प्रवाह चलता रहा और लोगों ने यथाशक्ति अध्यात्मरस का पान किया। पर्यूषण पर्व के अंतिम दिन चतुर्दशी को श्री क्षेत्रपालजी में पंडितजी का प्रवचन हुआ और जैन समाज ललितपुर की ओर से श्री कपूरचंदजी बुखारिया की अध्यक्षता में पंडितजी का

भावभीना सन्मान किया गया, जिसमें श्री पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ, श्री पंडित श्यामलालजी न्यायतीर्थ, पंडित स्वरूपचंदजी, पंडित श्री मानिकचंदजी सर्राफ, श्री उत्तमचंदजी राकेश, श्री चौधरी भागचंदजी, श्री मास्टर कपूरचंदजी सर्राफ आदि वक्ताओं ने अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये। पंडित परमेष्ठीदासजी ने जैन समाज की ओर से अभिनंदनपत्र समर्पित किया। महिला समाज की ओर से श्रीमती पंडित शकुन्तलाबाई जैन ने भी अपने विचार प्रगट किये थे। सभी वक्ताओं ने पूज्य श्री कानजीस्वामी के और सोनगढ़ संस्था के प्रति आभार व्यक्त किया और कहा कि उन्हीं के प्रताप से आज हमें जैनधर्म के मूलभूत सिद्धांतों को समझने की यह नई दृष्टि प्राप्त हुई है। ललितपुर में 'आत्मधर्म' पत्र के करीब 150 ग्राहक बने।

महरौनी (उ.प्र.) तारीख 5-9-71:—

महरौनी दिगम्बर जैनसमाज एवं श्री मथुरादासजी चौधरी के विशेष अनुरोध पर श्री पंडित हिम्मतभाई ललितपुर से अनेक सज्जनों सहित एक दिन के लिये पधारे; जहाँ उनका हार्दिक स्वागत किया गया, बाजार से प्रारंभ होकर स्वागत जुलूस बैण्डबाजे सहित दिगम्बर जैन मंदिर तक गया। मार्ग में अनेक स्थानों पर फूलमालाओं से पंडितजी का स्वागत हुआ। श्री खुशालचंदजी एडवोकेट ने स्वागत-भाषण दिया था। पश्चात् 8.00 से 9.00 बजे तक पंडितजी का प्रवचन श्री मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुआ। मंदिर का प्रांगण स्त्री-पुरुषों से खचाखच भरा हुआ था। लोगों का अत्यंत आग्रह होने पर भी समयाभाव के कारण दूसरा प्रवचन न हो सका, क्योंकि उसी दिन पंडितजी को टीकमगढ़ पहुँचना था। महरौनी के समाज ने पंडितजी को हार्दिक विदा दी।

टीकमगढ़ (म.प्र.) तारीख 5-9-71: —

श्री पंडित कल्याणचंदजी आदि के अनुरोध पर कुछ घण्टों के लिये पंडितजी महरौनी से टीकमगढ़ भी पधारे और श्री हुकमचंदजी एडवोकेट के यहाँ ठहरे। वहीं भोजन हुआ। दोपहर को 2.00 से 3.00 बजे तक पंडितजी का प्रवचन दिगम्बर जैन मंझार के मंदिर में हुआ। वर्षा के बावजूद बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। सबने पंडितजी को रुकने का बड़ा आग्रह किया किंतु कार्यक्रम के अनुसार दूसरे दिन सवेरे बीना पहुँचना था, इसलिये रुक न

सके। टीकमगढ़ में एक जैन डाक्टर ने पंडितजी से कहा कि आज पहली बार मैंने इतना अच्छा आध्यात्मिक प्रवचन सुना है।

टीकमगढ़ से ललितपुर जाते हुए विशेष आग्रह के कारण सायंकालीन भोजन महरौनी में श्री मथुरादासजी चौधरी के यहाँ रखा था; और रात्रि को 8.00 बजे ललितपुर पहुँच गये थे।

बीना (म.प्र.) तारीख 6-9-71:—

दूसरे दिन प्रात:काल 8बजे अमृतसर एक्सप्रेस से पंडितजी ने ललितपुर से बीना के लिये प्रस्थान किया। स्टेशन पर बड़ी संख्या में लोग पंडितजी को विदा करने आये थे। बीना स्टेशन पर हार्दिक स्वागत हुआ। श्री सिंघई श्री नंदनलालजी तथा उनके सुपुत्र श्री राजकुमारजी अपनी मोटर में पंडितजी को घर ले गये। उसी दिन जैनसमाज के प्रसिद्ध विद्वान श्री पंडित जगन्मोहनलालजी खुरई से बीना पधारे थे और सिंघईजी के यहाँ ठहरे थे। उसी दिन शाम को बीना में क्षमावाणी का पर्व बड़े उत्साह से स्थानीय पंजबा नैशनल बैंक के मैनेजर की अध्यक्षता में मनाया गया; तेज वर्षा के बावजूद नर-नारी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। प्रथम श्री पंडित जगन्मोहनलालजी का भाषण क्षमावाणी पर हुआ, उसके पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने स्थानीय प्रसिद्ध विद्वान श्री पंडित बंशीधरजी व्याकरणाचार्य से अनुरोध किया कि वे अपना भाषण दें; परंतु उन्होंने कहा कि पहले पंडित हिम्मतभाई का भाषण होना चाहिये, उसके बाद मैं बोलूँगा। इसलिये पहले पंडितजी ने क्षमावाणी पर अपना भाषण प्रारंभ किया और क्षमा संबंधी कुछ दृष्टांत देकर हास्य की लहर पैदा कर दी। फिर क्षमा का असली स्वरूप भी समझाया। बाद में श्री पंडित बंशीधरजी ने अपना भाषण दिया। पश्चात् अध्यक्ष का भाषण हुआ और स्वल्पाहार के बाद समारोह की समाप्ति हुई। दूसरे दिन तारीख 7-9-71 के सवेरे बीना बजरिया में पंडितजी का प्रवचन 8से 9 बजे तक हुआ, जिसमें अच्छी संख्या में लोग उपस्थित थे। प्रवचन के पश्चात् श्री लक्ष्मीचंदजी जैन के यहाँ भोजन करके स्टेशन गये और बम्बई के लिये प्रस्थान किया।

विदिशा (म.प्र.) तारीख 7-9-71:—विदिशा स्टेशन पर श्री सेठ राजेन्द्रकुमारजी, श्री जवाहरलालजी, श्री पंडित ज्ञानचंद्रजी आदि सज्जन पंडितजी को लेने आये, और पंडितजी के बहुत मना करने पर भी गाड़ी से उतार लिया। उस दिन रात्रि को सेठजी के मंदिर में 8.00 से

9.00 बजे तक और दूसरे दिन सवेरे 7.00 से 8.00 बजे सेठजी के मंदिर में दो प्रवचन हुए, पश्चात् 8.00 से 9.00 बजे तक एक प्रवचन श्री बड़े मंदिरजी में (किले के अंदर) हुआ। श्री ज्ञानचंदजी के यहाँ भोजन के पश्चात् 11 बजे की ट्रेन से पंडितजी ने बम्बई के लिये प्रस्थान किया। स्टेशन पर अनेक लोग पंडितजी को विदा करने आये और हार्दिक विदा दी।

—मगनलाल जैन

हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश):—इस वर्ष पर्यूषण पर्व यहाँ बड़ी धूमधाम से मनाया गया। श्री बी.सी. जैन एडवोकेट के प्रयत्नों द्वारा श्री जेठालालभाई एच. दोशी (मोरबीवालों ने) 'श्रावकधर्म प्रकाश' पर बड़े मार्मिक ढंग से आध्यात्मिक प्रवचन किया। साथ में श्री पंडित जयचंदजी लोहाडे (एम.ए., एल.एल.बी.) द्वारा 'तत्त्वार्थसूत्र' पर तथा बाबूलालजी पाटोदी द्वारा 'दशधर्मों' पर प्रभावशाली प्रवचन हुआ। चारों मंदिरों एवं सिकन्द्राबाद में भी इसीप्रकार अभिषेक-पूजा-भक्ति का कार्यक्रम चलता रहा। जिनेन्द्र की रथयात्रा निकाली, नवयुवकों के द्वारा 'दहेज प्रथा के भीषण परिणाम' नामक नाटिका खेली गई, जिसका समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

—हैदराबाद मुमुक्षु समाज

लश्कर (म.प्र.)—हमारे विनम्र निवेदन पर सोनगढ़ विद्वत परिषद से दसलक्षण पर्व पर पंडित श्री जवाहरलालजी विदिशावालों को लश्कर नगर में भेजने से जिनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। आपने प्रतिदिन विभिन्न स्थानों पर दिन में तीन-चार बार प्रवचन कर आध्यात्मिक रस की वर्षा की है। प्रतिदिन प्रात: 5.00 बजे से 7.00 बजे तक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल माधोगंज में मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन, 7.00 बजे से 10 बजे तक सामूहिक पूजन, दोपहर तीन बजे से चार बजे तक नया मंदिर दानाओली में सूत्रजी पर प्रवचन और रात्रि में आठ बजे से दस बजे तक माधोगंज मंदिर में कभी बड़ा मंदिर डीडवाना ओली में कभी नया बाजार मंदिर में कभी गोकुलचंदजी के मंदिर में प्रवचन कर लश्कर जैन समाज में आध्यात्मिक रुचि जागृत की है। जिसके कारण बड़ा मंदिर डीडवाना ओली, नया मंदिर दाना ओली, गोकुलचंदजी का मंदिर ग्वालियर में स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई है। यहाँ अनेक लोगों ने प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिरजी में स्वाध्याय करने का नियम लिया है।

आपने अपनी ओर से मुमुक्षु मंडल माधोगंज को 51) रुपये और स्वाध्याय मंडल

डीडवाना ओली लश्कर को 51) रुपये दान देकर अपूर्व उदारता का परिचय दिया है। इस हेतु लश्कर जैन समाज पंडितजी की व सोनगढ़ विद्वत् परिषद् की अत्यंत आभारी है और निरंतर सहयोग की आशा करती है।

इस महान प्रभावना के फलस्वरूप हम 151) रुपये का ड्राफ्ट श्री जैन स्वाध्यायमंदिर, सोनगढ़ के नाम भेज रहे हैं। —मंत्री

जयपुर:—पर्यूषण पर्व में पंडित रतनचंदजी शास्त्री, एम०ए० विदिशा से पधारे थे। पंडितजी का प्रवचन प्रात:काल श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर तेरापंथी, तथा सायंकाल 7.00 से 8.00 बजे तक श्री टोडरमल स्मारक भवन एवं 8.00 से 9.00 तक श्री दिगम्बर जैन मंदिर बड़ दीवानजी मनिहारों का रास्ता में होता था। पंडितजी का तर्कपूर्ण व्याख्यान उपस्थित जनसमूह मंत्रमुग्ध होकर श्रवण करता था। बड़े मंदिर में 'श्री मोक्षशास्त्र' पर श्री टोडरमल स्मारक भवन एवं बडे मंदिर में 'दशधर्मों' पर प्रवचन चलता था।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सौ० कमलाबाईजी स्मारक भवन में महिलाओं के बीच प्रवचन करती थीं।

श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री इस वर्ष पर्यूषण पर्व में बम्बई गये थे, उनका अभाव उनके ज्येष्ठ भ्राता पंडित रतनचंदजी ने जरा भी खटकने नहीं दिया।

इसके लिये जयपुर जैन समाज आपका अत्यंत आभारी है।

मंत्री, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
जयपुर (राजस्थान)

ग्वालियर:—दिनांक 1-8-71 से 8-8-71 तक पंडित मोतीलालजी आरोन के द्वारा अष्टाह्निका पर्व में प्रवचनों के द्वारा समाज को काफी लाभ हुआ तथा इसी मंगलमय प्रसंग पर मुमुक्षु मंडल का विशाल अधिवेशन हुआ। जिसमें मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के मंत्री श्री डालचंदजी ने भोपाल से यथासमय पहुँचकर मुमुक्षुओं को मोक्षमार्ग में विशेष अग्रसर होने की प्रेरणा दी, तत्पश्चात् अशोकनगर में भी पधारकर शिक्षण शिविर की शोभा बढ़ाई। श्री पंडित राजमलजी भोपाल, एक माह में तीन-चार बार ग्वालियर आकर मुमुक्षुओं को विशेष लाभ देने

का प्रयत्न करते हैं, जो सराहनीय है। नये बाजार में एक स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई।

खनियाधाना:—श्री पंडित गोविन्दरामजी (खडेरी) ने पहुँचकर नये तत्त्व जिज्ञासुओं को धर्ममार्ग में प्रवेश करने की रुचि में वृद्धि की तथा बालकों को वीतराग विज्ञान पाठशाला का प्रारंभ कराया।

मलकापुर:—श्री पंडित राजमलजी भोपाल ने अपना 4 दिन का अमूल्य समय देकर समाज को विशेष आत्मलाभ पहुँचाया।

विदिशा:—दिनांक 26-7-71 को मोक्ष सप्तमी (श्री पार्श्वनाथ का निर्वाण कल्याणक महोत्सव) विशेष प्रभावना के साथ मनाकर स्वभावसन्मुख होने की प्रेरणा प्राप्त की।

मलाड (बम्बई):—इस वर्ष भी दसलक्षणी पर्व सानंद मनाया गया। श्री चिमनलालजी बम्बई तथा श्री पंडित हुकमचंदजी जयपुर ने प्रवचन का लाभ दिया। जिनमंदिर का निर्माण दो साल से ही हुआ है। ऐसी कल्पना भी नहीं थी कि इतनी बड़ी संख्या में धर्मजिज्ञासु यहाँ लाभ लेंगे। अनंत चतुर्दशी के दिन प्रतिक्रमण के लिये बाहर से भी लोग बड़ी संख्या में आये थे।

पाठशाला में परीक्षा तारीख 15-8-71 को ली गई। 46छात्रों ने भाग लिया; 96प्रतिशत परीक्षाफल आया। परीक्षक श्री प्राणलालभाई थे। विद्यार्थियों को 240 पुरस्कार श्री धीरजभाई डेलीवाला की ओर से तथा अल्पाहार श्री नगीनदास अजमेरा की ओर से सभी को दिया गया।

—अमृतलाल शीराज-मंत्री

मलकापुर:—श्री पंडित मोतीलालजी (आरौन) के पधारने से धर्म प्रभावना विशेष आनंदमय रही। सवेरे और रात्रि को जैन सिद्धांत प्रवेशिका पढ़ाते थे। दैनिक कार्यक्रम में समूह पूजा, सामायिक पश्चात् सवेरे-दोपहर का प्रवचन, जिनेन्द्र भक्ति, शंका-समाधान शिक्षण कक्षायें आदि रहते थे। —चुनीलालसा, मलकापुर

सहारनपुर (उ.प्र.):—इस साल हमारे निमंत्रण पर लश्कर निवासी श्री पंडित धन्नालालजी पधारे। आपने दिन में चार बार जैनशिक्षण कक्षायें और प्रवचनों के द्वारा समाज में अच्छी जागृति कराई, चारों अनुयोगों के द्वारा सर्वज्ञता वीतरागतामय धर्मतत्त्व का दिग्दर्शन

कराया। आपके सदाचारण से भी जनता प्रभावित हुई। प्रश्नकर्ता के प्रश्न को आप अपने मुख से दुहराकर स्पष्ट समझाते थे, जिससे समाधान हो जाता था। आपके द्वारा जिनवाणी का मर्म जानकर नये-नये अनेक भाई-बहिनों ने नित्य स्वाध्याय करने का नियम लिया। सोनगढ़ संस्था का अनेक प्रकार से उपकार प्रगट करते थे.... —जिनेश्वरप्रसाद तथा देवचंद जैन

खण्डवा (म.प्र.):—पर्यूषण पर्व में ब्रह्मचारी हेमराजजी द्वारा सर्वप्रकार धार्मिक आनंद उत्सव एक मास से चालू रहा। जैन सि.प्र. शिक्षण कक्षा में भी करीब 500 महिलाएँ एवं पुरुषवर्ग अच्छी तरह लाभ ले रहे हैं। सारे कार्यक्रम नियमित चलते हैं, सुबह समयसारजी कर्ता-कर्म पर प्रवचन, पश्चात् एक घंटा तक जिनमंदिर में सामूहिक पूजन, दोपहर को सूत्रजी, पश्चात् छहढाला की शिक्षण कक्षा चलती है जिसमें बहुत बड़ी संख्या रहती है। रात्रि को दस धर्मों पर प्रवचन होते हैं। ब्रह्मचारीजी महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर समाज में ऐसे सुशिक्षित व्यक्ति भी आकर्षित हुए हैं जो कभी मंदिरजी एवं शास्त्र-प्रवचन में नहीं आते थे। आपके व्यक्तित्व एवं वाणी से प्रभावित होकर समाज ने आपसे विशेष आग्रह किया कि आप दिवाली तक यहीं रहेंगे। ब्रह्मचारीजी नवयुवकों तथा छात्रों के लिये भी जैन शिक्षण कक्षाएँ लगावेंगे। — दयाचंद पुनासा जैन

बेंगलोर:—पर्यूषण पर्व में सोनगढ़ संस्था द्वारा बम्बई से सुमनभाई धर्म प्रभावनार्थ आये थे, प्रवचन उपरांत पाठशाला में जैन शिक्षण कक्षाएँ भी चलती थीं। जिज्ञासुओं ने अच्छा लाभ लिया। श्री सेठ जुगराजजी (बम्बई) की प्रेरणा से यहाँ हमेशा धार्मिक कार्यक्रम तो चलता ही है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल करीम बिल्डींग चिकपेट में है। —मनुभाई जैन

कलकत्ता:—कोटा निवासी पंडित श्री जुगलकिशारजी एम.ए. साहित्यरत्न हमारे अनुरोधवश पधारे। पर्व के दिनों में इसबार विशेष उत्साह और धर्म-बुद्धिरूप प्रभावना हुई। 16दिन तक आपके प्रवचनों का लाभ मिला, छहों द्रव्यमय विश्व का व्यवस्थितपना-स्वतंत्रपना; निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार; लौकिकमत और सर्वज्ञ वीतराग का मत आदि विषयों को स्पष्टतया समझाने की उत्तम शैली होने से अपरिचित भी जिज्ञासा पूर्वक सुनते थे और यथार्थ तत्त्व का ज्ञान करते थे। सायंकालीन प्रवचन में मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अध्याय में से जीव-तत्त्व की श्रद्धा के विषय में सुंदर प्रवचन होता था। शंका-समाधान द्वारा भी

बहुत लाभ पहुँचा, मुमुक्षु मंडल की संख्या में वृद्धि हुई, तत्त्वजिज्ञासा बढ़ी, श्री युगलजी का तथा सोनगढ़ का जितना उपकार माना जाये, उतना कम ही है। —वीरचंद मोटाणी

राघौगढ़ (म.प्र.):—मुनई (गुज.) निवासी श्री मणिभाई प्रवचन हेतु पधारे। पर्वराज में अति आनंद हुआ। आपकी प्रवचन शैली सबको पसंद थी। त्यागधर्म के दिन एक अभूतपूर्व कार्य हुआ; स्वाध्याय भवन की कमी थी जो कि आपकी प्रेरणा से 13000), दान मिला, जिससे उत्साह बढ़ रहा है। प्रतिदिन सात घण्टे का कार्यक्रम रहता था। — ताराचंद जैन, मंत्री

कोटा (राज०):—इस वर्ष विदिशा निवासी श्री पंडित ज्ञानचंदजी के पधारने से लोगों में अच्छा धार्मिक उत्साह रहा। आपने 11 दिन तक प्रवचन, तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान आदि के द्वारा अध्यात्म की सरिता प्रवाहित की। जैन सिद्धांतों का प्रतिपादन अपनी विशिष्ट शैली में करके लोगों को आत्मविभोर कर दिया। आपने जैन शिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया और अनेक प्रकार से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। —माणिकचंद जैन

आरौन (गुना-म.प्र.):—पर्यूषण पर्व में श्री अमोलकचंदजी 'बंधु' अशोकनगर से पधारे। प्रात: 7.00 बजे से लेकर रात्रि को 10.00 बजे तक धार्मिक कार्यक्रम चलते थे। आपके प्रवचनों एवं शंका-समाधान आदि का समाज ने अच्छा लाभ उठाया।

इटावा (उ.प्र.):—श्री ब्रह्मचारी रमेशचंदजी के पधारने से पर्यूषण पर्व में बड़ा आनंद आया। सवेरे पूज्य स्वामीजी का प्रवचन टेपरील द्वारा चलता था और ब्रह्मचारीजी उस पर आवश्यक विवेचन भी करते थे; दोपहर को तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन एवं रात्रि को शंका-समाधान आदि कार्यक्रम चलते थे। यहाँ श्री ब्रह्मचारी हेमराजजी ने मुमुक्षु मंडल की स्थापना की है। लोगों में अध्यात्मतत्त्व को समझने की खूब रुचि है। श्री ब्रह्मचारी रमेशचंदजी के आने से उसमें विशेष वृद्धि हुई। ब्रह्मचारीजी को कुछ दिन और रुकने का बड़ा आग्रह किया गया, परंतु जसवंतनगर का कार्यक्रम होने से रुक नहीं सके। —चंद्रप्रकाश जैन

महीदपुर (म.प्र.):—पर्यूषण पर्व के अवसर पर हमारे यहाँ श्री सुजानमलजी मोदी को भेजकर बड़ा उपकार किया है। श्री मोदीजी के आध्यात्मिक प्रवचनों से हम सब अत्यंत प्रभावित हुए। श्वेताम्बर समाज के लोग भी लाभ लेते थे। आपने आत्मा के अनंत गुणों की व्याख्या बड़े ही सुंदर ढंग से की। जैनतर बंधु भी आपके प्रवचन सुनने आते थे। जैन-दर्शन की

अलौकिक बात सुनकर सब आत्मविभोर हो जाते थे। आपकी शैली उत्तम है; सबके मुँह पर सोनगढ़ का नाम है। —कल्याण जैन

बीना-बजरिया (म.प्र.):—इस वर्ष हमारे अनुरोध पर ब्रह्मचार पंडित धन्यकुमारजी पर्यूषण पर्व में पधारे; जिससे हमारे यहाँ बड़ा उत्साह रहा। आपकी कथनशैली से लोग अत्यंत प्रभावित हुए। शिक्षित नवयुवकों में भी अध्यात्म के प्रति रुचि जागृत हुई। आपने यहाँ की धर्मशाला के लिये 101) एक सौ एक रुपया दान में दिया। जब लोगों को ज्ञात हुआ कि श्री अतिशयक्षेत्र शिरपुर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के मामले में आपने तन-मन-धन से कार्य करके विजय प्राप्त करायी है और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का विशाल आयोजन आपके ही प्रयत्नों से सफल हुआ है, तब तो लोगों को आपके प्रति विशेष श्रद्धा जागृत हुई। श्री ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी को हमारे यहाँ भेजने के लिये हम सोनगढ़ प्रचार कमेटी के आभारी हैं।

—बाबूलाल जैन 'मधुर'

देऊलगाँव-राजा (म.प्र.):—यहाँ पर्यूषण पर्व हेतु सोनगढ़ प्रचार कमेटी की ओर से श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी पधारे, जिससे लोगों में बड़ा आकर्षण रहा। आप पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन टेपरील द्वारा सुनाते थे और उनका स्पष्टीकरण भी करते थे। इसके अलावा शास्त्रसभा, शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम भी होता था। कारंजा निवासी श्री पंडित धन्यकुमारजी मोरे के आगमन से भी लोगों को अच्छा लाभ मिला। यहाँ स्वाध्याय मंडल की स्थापना हो गई है। यहाँ से पंडित दीपचंदजी हिंगोली के लिये रवाना हुए।

—डॉ. प्रियंकर यशवंतराव जैन

रखियाल (गुजरात) में

जैनधर्म शिक्षण शिविर का आयोजन

तारीख 17-9-71 से 29-9-71 तक जैन शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया है; जिसका उद्घाटन जयपुर निवासी श्री कोमलचंदजी गोधा ने किया। श्री डालचंदजी सर्राफ भोपालवालों ने समारोह की अध्यक्षता की। इस अवसर पर बाहर से अनेक विद्वानों को आमंत्रित किया गया है। श्री पंडित खेमचंदभाई सोनगढ़, श्री बाबुभाई फतेपुर, श्री पंडित

फूलचंदजी सिद्धा शास्त्री वाराणसी, श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री एम.ए. जयपुर आदि के पधारने से समाज में विशेष उत्साह है। बाहर से बड़ी संख्या में शिक्षार्थी आये हुए हैं। शिक्षण में वीतराग विज्ञान विद्यापीठ, जयपुर के पाठ्यक्रम के अलावा जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला, द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि चल रहे हैं। श्री दिगम्बर जैन शिक्षण समिति

रखियाल (गुजरात)

आवश्यक सूचना

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर से संबंधित समस्त पाठशालाओं व स्कूलों को परीक्षा के प्रवेश-फार्म तथा नवीन नियमावली भेजी जा चुकी है। अत: प्रवेश फार्म शीघ्र ही भरकर भेजें।

फार्म भरते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाये कि आवश्यक खाना पूर्तियाँ जैसे परीक्षार्थी का नाम, पिता का नाम, विषय, संस्था का नाम व आयु आदि साफ-साफ स्पष्ट व सुवाच्य अक्षरों में लिखा जाये। फार्म पर केन्द्राध्यक्ष के हस्ताक्षर होना अनिवार्य है।

बालबोध पाठमाला भाग-3 की मौखिक परीक्षा होगी। फार्म की एक-एक प्रति ही भरकर कार्यालय को भेजें। मंत्री—टोडरमल स्मारक परीक्षाबोर्ड, जयपुर

सोनगढ़ (सौराष्ट्र):—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रतिवर्ष की भाँति पर्यूषण पर्व बड़े ही आनंदोल्लास पूर्वक मनाया गया। बाहर से सैकड़ों साधर्मी बन्धु पर्यूषण पर्व मनाने हेतु आये थे और पूज्य स्वामीजी की अमृतवाणी का लाभ लिया था। सवेरे श्री नियमसारजी पर तथा दोपहर में श्री नाटक-समयसार पर प्रवचन हो रहे हैं। श्री निर्मलाबहिन (स्व. ब्रह्मचारी मूलशंकरजी देसाई की सुपुत्री) ने 16 उपवास किये थे।

आत्मधर्म के ग्राहकों से....

पिछले दिनों 'आत्मधर्म' की व्यवस्था के संबंध में ग्राहकों की शिकायतें आती रही हैं, परंतु अब व्यवस्था बराबर हो रही है। आत्मधर्म कार्यालय में कर्मचारी की बदली के कारण कुछ भूलें हुई थीं, जिनके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। अब यदि आपकी कोई शिकायत हो तो स्पष्ट पते और ग्राहक नंबर सहित हमें लिखें; आपकी शिकायत दूर करने का पूरा प्रयत्न किया

जायेगा। यदि आपको अपना पता बदलवाना है तो पुराना और नया दोनों पते हमें लिखिये।

'आत्मधर्म' का नया वर्ष वैशाख महीने से प्रारंभ होता है। देर से ग्राहक बननेवालों को कभी–कभी पिछले अंक नहीं मिलते, परंतु जो अंक स्टाक में होंगे, वे आपको अवश्य भेजे जायेंगे—आशा है हमें आपका पूरा सहयोग प्राप्त होगा।

व्यवस्थापक:
आत्मधर्म कार्यालय
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

अमृतवाणी (द्वितीय आवृत्ति)

(लेखक :— स्व. श्री ब्रह्मचारी दुलीचंदजी)

प्रथमावृत्ति तुरंत बिक जाने से यह दूसरी आवृत्ति ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला की ओर से प्रकाशित की गई है। इसमें आध्यात्मिक वचनों का अच्छा संग्रह है।

पृष्ठ 120, मूल्य 1.10 पैसे, पोस्टेज अलग।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पुस्तक प्रकाशन संबंधी
विज्ञप्ति

निम्नोक्त ग्रंथ छपवाने का निर्णय किया गया है। पुस्तकें छपते ही तुरंत बिक जाती हैं; अत: जिन भाइयों को जिन-जिन पुस्तकों की आवश्यकता हो, वे अपने पूरे पते सहित आर्डर बुक करा देवें।

(1) मोक्षशास्त्र : (सूत्रजी) बहुत बड़ी संग्रहात्मक टीका।

(2) समयसारजी : बन्ध अधिकार प्रवचन : (भाग 5 वाँ)

(3) आत्मवैभव : (जिसमें समयसारजी की 47 शक्तियों पर विस्तृत प्रवचन है)

(4) 'नय प्रज्ञापन' : (जिसमें प्रवचनसारजी शास्त्र के 47 नयों पर विस्तार से प्रवचन हैं)

(5) पुरुषार्थसिद्धि-उपाय : (श्री अमृतचंद्राचार्य कृत ग्रंथ पर पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी की भाषा टीका)

(6) ज्ञानचक्षु : (समयसार गाथा 320 श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका पर पूज्य स्वामीजी के विस्तृत प्रवचन)

(7) समयसार नाटक : (दूसरी आवृत्ति)

(8) छहढाला : (सचित्र-सटीक)

(9) छहढाला : (मूलमात्र)

— छपकर तैयार हैं —

* श्री समयसार प्रवचन (भाग-1) : (श्री समयसारजी की गाथा 1 से 12 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन) पृष्ठ 480, मूल्य 4.50

* श्री दशलक्षण धर्म : (श्री पद्मनंदि पंचविंशतिका में से दस धर्मों पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

पृष्ठ 104, मूल्य 0.75 पैसे

* अध्यात्मवाणी : (स्व. ब्रह्मचारी दुलीचंदजी कृत) पृष्ठ 105, मूल्य 0.85

पता — श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

पोस्ट- सोनगढ़ (सौराष्ट्र) जिला-भावनगर

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-४)	4.00
8	मुक्ति का मार्ग	0.50
9	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
	,, ,, ,, भाग-3	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी	0.25
12	समयसार पद्यानुवाद	0.25
13	द्रव्यसंग्रह	0.85
14	छहढाला (सचित्र)	1.00
15	अध्यात्म-संदेश	1.50
16	नियमसार (हरिगीत)	0.25
17	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
18	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
19	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	1.50
20	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
21	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	1.00
22	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.40
23	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.50
24	बालबोध पाठमाला, भाग-३	0.55
25	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
26	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.65
27	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.65
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
28	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	0.25
29	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
30	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
	,, ,, (भाग-2)	8.00
31	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
32	मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय	0.50
33	जैन बालपोथी भाग-2	0.40
34	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	4.50
35	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
36	दशलक्षण धर्म	0.75
37	शब्द-कोष	0.20
38	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)